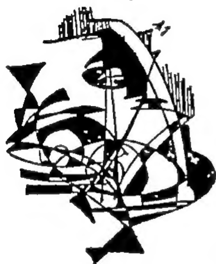
ये कथा.. रूप

[राजस्थान के आधुनिक कथाकारों का संकलन]



सम्पादक

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'



सूर्य प्रकाशन मन्दिर

बीकानेर



राजस्थान की मिट्टी में उत्पन्न होकर सारे भारत के कण-कण में व्याप्त हो गये उस महा मनीषी व साहित्यवेत्ता डॉक्टर रांगेय राघव की पुण्य स्मृति में श्रद्धांजली सहित जो हमें कहानियाँ सुनाते-सुनाते खुद ही सो गये।

—सम्पादक

—लेखक

—प्रकाशक

प्रकाशकीय

सूर्य प्रकाशन मंदिर के प्रकाशन की शृंखला में राजस्थान के पच्चीस आधुनिक कथाकारों की कथाओं का संकलन 'ये कथा रूप' नवीन कड़ी है।

प्रकाशन के व्यवसाय में केवल व्यावसायिक दृष्टिकोण श्रेष्ठ कर सिद्ध नहीं होता—व्यवसाय के साथ एक मिशन भी अत्यावश्यक है। मैंने इस माध्यम से प्रान्त की प्रतिभाओं को प्रकाश में लाने की किंचित चेष्टा की है। ताकि आप उन्हें पढ़ें समझें और परखें।

श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' द्वारा सम्पादित राजस्थान के पच्चीस आधुनिक कथाकारों का संकलन 'ये कथा रूप' आपके हाथों में देते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। क्योंकि यह कृति भी मेरे मूल उद्देश्यों की पूर्ति करती है।

इसके बाद भी अन्य कथाकारों की कथाओं के इस प्रकार के उपयोगी कथा संकलन आपकी सेवा में प्रस्तुत करने की योजना है।

इस पुस्तक के प्रकाशन पर मैं सभी-इष्ट-मित्रों सहयोगियों तथा इस संकलन के सभी कथाकारों का आभारी हूँ जिन्होंने इस अवसर पर मुझे सहयोग दिया है। विशेषतः आभारी हूँ इस संकलन के सम्पादक भाई यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' तथा भाई देवेन्द्र कुमार मूंधड़ा का जिन्होंने दिल्ली के व्यस्त जीवन में समय निकाल कर मुद्रण-सम्बन्धी सहायता दी।

प्रकाशन सम्बन्धी आपके सुझाव अभिनन्दनीय हैं।

राजेन्द्र बिस्सा
प्रबन्धक



सकेतिका • • • • •





●प्रभूदयाल सक्सेना

नानी का खरबूजा

माँ का यह आदेश है कि हम नानी से कोई संपर्क न रखें। न उनसे बोलें, न घर की कोई बात उसे बतायें। यदि हम भाई बहनों में से कोई इस आदेश की अवहेलना करेगा तो माँ उसे घर से निकाल देगी।

इस आदेश के परिणामों को जानते हुए भी हम में से हरएक नानी की चंग पर चढ़ जाता है। वह बुढ़िया कुछ ऐसा मोहन-मंत्र जानती है कि हम लोग उसके फन्दे में आये बिना नहीं रहते।

यही कारण है कि माँ का जरईसी आदेश जब नानी चाहती है बालू की भीत की भाँति ढह जाता है। माँ उसे गिरते-ढहते देखती रहती है मन ही मन कुढ़ती रहती है और उस क्षण की प्रतीक्षा करती रहती है जब घर में भयंकर विस्फोट होकर सारे परिवार की शान्ति को नष्ट कर देता है।

जब से हम भाई-बहनों ने होश सम्भाला है तभी से माँ और नानी का कलह हमारे जीवन का एक अंग बन गया है। वे मिलकर दो चार दिन भी शान्ति से नहीं रह पातीं और अलग अलग भी पन्द्रह बीस दिन से अधिक रहना मुहाल है। महीने में एक महाभारत तो अपने आँगन के कुरुक्षेत्र में हो ही जाता है। उसके उपरान्त नानी धुएँ के बादल की भाँति गायब हो जाती है और माँ उसके नाम को कोसती-झींकती गृहस्थी का छकड़ा ठेल के चलती है। घर का तूफानी वातावरण धीरे-धीरे विश्रान्ति का अनुभव करने लगता है। हम सबके खिंचे हुए तार उतर जाते हैं।

माँ कसमें खाती है अब बुढ़िया को घर में पैर नहीं रखने दूँगी

हम सब बच्चों को इकट्ठा करके नानी के विरुद्ध सुदृढ़ मोर्चा बनाये रखने का उपदेश देती है।

हमें भी लगता है कि नानी निश्चय ही इस योग्य है कि उसके साथ कोई संपर्क न रखा जाय। उसे घर में घुसना तो दूर घर की ओर देखने भी न दिया जाय।

हमारे बाबा एक निरीह प्राणी हैं। वे किसी झगड़े-बखेड़े में नहीं पड़ते। वे तो माँ का ही सामना करने की सामर्थ्य नहीं रखते। नानी को देखते ही उन्हें साँप सूँघ जाता है। उसके सामने उनके मुँह से बोल नहीं निकलता पर नानी जब चली जाती है तो वे हँसकर माँ से कहते हैं तुम्हारी यह माँ नहीं आफत की पुड़िया है।।

हम सब यह सुनकर हँस पड़ते हैं। इस तरह हमारी नानी का नाम ही पड़ गया है आफत की पुड़िया। उसका यह नाम उसके व्यक्तित्व पर खूब फबता है।

जब वह घर में आने के लिए घर के आस-पास मंडराने लगती है तो बाबा धीरे से माँ से कहते हैं संभल जा वह आ गई है।

माँ इस पर कसमें खाती है और प्रण करती है कि उसे देहरी के भीतर पैर नहीं रखने देगी।

बाबा समझाते हैं आखिर बेचारी आयेगी कहाँ? कौन उसका लड़का बैठा है! दुखिया बेचारी!

माँ—बोलो मत। उसकी सिफारिश करोगे तो तुम्हें भी घर से निकाल दूँगी।

बाबा—अपनी माँ के लिए ऐसा कहती हो!

माँ—वह मेरी माँ नहीं राक्षसी है। माँ होती तो

बाबा—तो तुम्हें लाड़ लड़ाती?

माँ—लाड़ को रहने दो उनका बस चलता तो मुझे कच्चा चबा जाती।

इस पर हम सब माँ से अनुरोध करते कि वह नानी के साथ कहाँ कहाँ घूमी थी? उसकी कहानी सुनाये।

माँ—बच्ची थी तब तो समझती नहीं थी। उस समय तो जैसा यह कहती थी वैसा ही मैं करती थी। ब्याह होने के बाद भी कई साल तक इसने मेरा पग टिकने नहीं दिया। कभी खेत में तो कभी खलिहान में। नंगे पाँव बीहड़ों और जंगलों में भूखी प्यासी न जाने कहाँ कहाँ लिये डोलती थी। आँधी पानी, सर्दी-गर्मी हमारी कहाँ कटती थीं इसका कोई निश्चय न था। तन पर कपड़े न थे पेट भर अन्न नसीब न था। नहाने धोने का तो उन दिनों सपना भी नहीं होता था। आज इसके द्वार पर निक जाते तो हम उसकी गालियाँ खाकर सो रहते। पशी के कुत्तों से भी बदतर जीवन तुम्हारी इस नानी के उस राज में हमें जीना पड़ा। आज भी यह दौड़ दौड़ कर इसीलिए आ जाती कि इसे हमारा सुख से रहना नहीं सुहाता।

एक दिन जब इसी तरह नानी की चर्चा चल रही थी तो वह आकर द्वार से झांकी और बड़ियों की एक पोटली मेरी छोटी बहन कान्ति को पकड़ा कर चली गई। कान्ति ने पोटली लाकर माँ को दी माँ ने कान्ति की अच्छी पूजा की और वह पोटली ले जाकर फेंक दी। परन्तु नानी तो छूमंतर हो चुकी थी।

मैंने पोटली लेकर छिपा दी और दो दिन खूब अच्छी तरह बड़ियों को छौंककर सबको खिलाया। नानी की कमाई में खासी बरकत हुई। बड़ियों के उपहार ने माँ के कठोर मन की दीवार को सहम-सहम कर दिया। इस बीच नानी के गृह प्रवेश के लिए समुचित वातावरण बन चुका था। एक प्रातःकाल हम सब भाई-बहनों ने जागकर देखा कि नानी लाइफबॉय साबुन से रगड़ रगड़ कर स्नान कर रही है और शायद इससे पूर्व सनलाइट की एक टिकिया अपने कपड़ों के धोने पर खत्म कर चुकी है। हलुआ और खीर के सिवा नानी को हमारे घर पर कोई भोजन भाता नहीं है। यदि अच्छा स्वादिष्ट बन जाये तो पाव-आध सेर बेसन या मोठ के गर्म-गर्म पकौड़े जरूर वह पेट में डाल लेती है। रोटी दाल खाने वह हमारे घर आती ही नहीं है यह तथ्य माँ-बाबा से समझकर हम सब जानते हैं। हमारे घर आकर नानी ने

रती भर नहीं होता । झाड़ू काढ़ना रसोई बनाना बरतन मलना पानी भरना धोकर चुनना यह सब वह कतई नहीं करती । वह साफ कहती है कि क्या वह सब करने के लिये यहाँ आती है । बाहर नहीं करना हो और मोटा-मोटा रूखा-सूखा ही खाना हो तो क्या नगर के दूसरे घर बन्द हो गए हैं ?

बात भी ठीक है बेटी-जमाई के घर भी बैरी के जैसा व्यवहार मिले तो फिर कोई वहाँ किस तरह ठहरे ?

हवा में सूख रहे भाभी के चमकते कपड़ों पर एक दृष्टि डालकर माँ ने बरछी से रगड़े जा रहे जाड़ामात्र पर बाबा की ओर देख कर थोड़ा मुस्करा दिया । फिर कुछ से भरी कान्ति को भाभी की ओर धक्का देते हुए बोली—जा जा तू भी नहा ले ।

कान्ति भाभी के शरीर से टकरा कर चीखी उधर भाभी ने उसे पीछे फेंका, बोली—मैं क्या तेरी और तेरी सन्तान की गुलामी करने के लिए आई हूँ ?

क्रोध के मारे माँ का चेहरा तमतमा गया । बाबा काठ बने बैठे रहे । उसी समय महाभारत हो जाता यदि बीच में बुआ मौसी न आ जाती ।

कम्मा मौसी ने आते ही माँ को बात दिखाई—अरे तू तो यहीं बैठी है आज भी ? सवेरे सवेरे लकड़ियों के लिए चलने की बात थी न ?

माँ क्रोध को पीकर बिना कुछ कहे खड़ी हो गई । बोली—चलो ।

माँ और मौसी निकल गईं । भाभी ने साबुन मलकर और उसका झाग उठाते हुए समझदार के तौर पर कहा—रौब मेरे पर हुकुम चलाती है ।

माँ किसी काम से लौट आई थी । उन्होंने सुन लिया तो सामने पड़े हुए खाट के पाये को उठाकर बहुआ पर फेंका । चोट खाकर भाभी चीखती भागी । वह भागती और गालियों की वर्षा करती जाती थी । माँ उसके पीछे लकड़ी लिए दौड़ रही थी । हमारे खत में हल्ला मच

गया। आदमी औरतें, बच्चे घरों से निकल कर तमाशा देखने लगे। नानी ने फुल पावर से रेडियो चालू कर रखा था। उसकी धारा प्रवाह गालियों का आनन्द लेते हुए पास-पड़ौस के लोग गैर जिम्मेदारी को पूरा निर्वाह कर रहे थे।

मां नानी का श्राद्ध करके जब घर लौटी तो मेरी और कान्ति की वह धुनाई हुई कि हम दोनों को छठी का दूध याद आ गया। कान्ति बड़ियों की पोटली लेने के लिये और मैं उन्हें फेंक न देकर रखने और सबको दिखाने के लिए पीटी गई। मां के अनुसार बड़ियों के सौदे में नानी की ही जीत रही। आठ दस आने की बड़ियों का उपहार देकर वह पांच छः रुपये का खर्चा कर गई और जाते समय एक हंगामा मचा गई जिसकी चोट से हमारा परिवार कई दिन तक कराहता रहा।

नानी-पुराण का यह बहुत पुराना अध्याय है, परन्तु यह हम दोनों को भूलता नहीं है। अभी उस दिन अचानक भोर होते ही हम भाई बहनों को नानी के दर्शन हो गये। पता नहीं किस तरह उसने हमारी गन्ध पा ली कि हम मां की नई नौकरी पर एवजी देने आये हुये हैं। उसने आकर हेडमास्टर साहब के घर के दरवाजे पर दस्तक दी और हम तीनों भाई-बहनों को पहचानने के लिए भीतर झांक कर देखा।

अनुरिया ने देखा नानी! मैंने और कान्ति ने भी देखा नानी! हम सब मर्यादाएं भूल कर नानी के चारों ओर फिर गये। जैसे नानी न होकर वह कोई अजूबा हो। उसने हमसे दो चार बातें की लड़े भड़े और यह कहते हुए चल पड़ी—तुम्हारी मां कहां है? घर पर पड़ी-पड़ी आराम करती है। तुम बेचारों को काम पर जोत देती है।

इतना कह कर वह चल पड़ी। कान्ति और अनुरिया उसके पीछे हो लिए। मैं भी उसका आमंत्रण स्वीकार करने के लिये उत्सुक थी पर मां की कठोर मुद्रा मेरे ऊपर नियन्त्रण रखे रही।

घंटों पर घंटे बीत गये पर भाई-बहन न लौटे। काम जितना अपने बस के अनुसार मैं कर पाई किया पर बहुत कुछ करना शेष रह गया।

आखिर वे दोनों लौटे। एक बड़ा सा खरबूजा सिर पर उठाये हुए। मेरा भी अपने निर्णय को विचारने लगा। भाभी ने इतनी देर में न जाने कौन सी पट्टी उन दोनों को पढ़ा दी कि वे खरबूजे पर मेरा अधिकार मानने को तैयार न थे। मैं मन ही मन समझती थी कि उनका कहना एक तरह से ठीक है परन्तु खरबूजे की सुगन्ध से पागल होकर मैं उस पर बराबर का अधिकार जता रही थी। मेरा तर्क था कि मैंने यहाँ रहकर उनके हिस्से का काम भी तो किया है। अगर मैं न रहती तो काम पड़ा रह जाता और माँ हम सबकी अच्छी खबर लेती।

आखिर छीना झपटी मार-धाड़ के बाद वे दोनों मान गये और खरबूजे के तीन टूक करके हम खाने बैठे। समय का हमें ध्यान न था कि कितना बीत चुका है।

हमने खाना आरम्भ किया ही था कि माँ आ धमकी। माँ की तीव्र दृष्टि का सामना हम न कर सके। हमने कबूल किया खरबूजा भाभी ने दिलाया है।

तो वह यहाँ भी पहुँच गई—माँ ने कहा—पर वह है कहाँ? मैं तो उसे ही ढूँढ़ती फिरती हूँ। उससे पूछना है कि रुपैया उसका जितना अब हुक्म चला है? उसके एकलौते को भट्टी में भूनने की कसम वह कब तक पूरी करेगी?

हम प्रसंग तो पूरा नहीं समझ सके परन्तु घटना की गम्भीरता का थोड़ा अन्दाज हो गया। शीघ्र ही माँ को पता लगा कि इतनी देर लगाकर भी हम काम को निबटा नहीं सके हैं। इस पर बिगड़ कर माँ ने हम लोगों को ललकारा—तुम्हें खरबूजा खाने को भेजा था कि काम करने को? सारा दिन गवाँ दिया तुम हरामखोरों ने।

हाथ की लकड़ी फटकार कर माँ आगे बढ़ी तो चतुरिया सदा की भांति चौकड़ी भरता नजर आया। बहिन ने दो-चार डंडे खाये और पसर गई। मेरी बारी आई तो मैंने कहा—मुझे मारने की जरूरत नहीं।

न तो मैं भाभी के साथ गई थी न बाजूबन्द ही लाई । वे ही दोनों साथ हैं ।

आवेश में बदहवास माँ ने मेरे तर्क पर ध्यान न दिया । सामना करने के लिए तैयार समझ कर मेरी खबर ली कि कुछ मत पूछो । मैं उसकी अनुचित मार से अपना आपा खो बैठी और बराबर बोलती रही । न माँ ने मारना बंद किया न मैंने बोलना । इस कांड की समाप्ति तभी हुई जब माँ मारते मारते थक गई और मैं मार खाते खाते अचेत होकर गिर पड़ी ।

कहते हैं इसी बीच हेड मास्टर साहब की पत्नी मंदिर से लौटी । उन्होंने माँ को बहुत बुरा भला कहा परन्तु माँ अपनी भूल मानने को तैयार न हुई । उसने कहा—अभी तो कुछ भी नहीं हुआ है । इसकी पूरी दुरुस्ती तो घर पर ले जाकर करूँगी पर मैं इस प्रकार मुच-मुच पड़ी थी कि घर ले जाना संभव न था ।

माँ ने कान्ति को कहा—जा बता भाभी कहाँ है ? आज मेरे हाथों उसका काल आया दिखता है ।

कांति काँपती काँपती आगे चली और माँ हाँफती-हाँफती पीछे । हेडमास्टरनी बेचारी ने भरसक मेरा उपचार किया । जगह-जगह हल्दी लेपी और पट्टियाँ बाँधी । जोड़ों पर लगी चोटों पर सेंक किया । घर का जो काम पड़ा रह गया था वह भी उसने अपने हाथों से ही किया ।

माँ और कांति ने भाभी की खोज में गलियों की खाक छान डाली । दोपहर से शाम तक वे उसे खोजती फिरीं पर वह ऐसी रफूचक्कर हुई कि उसकी धूल भी उनके पल्ले न पड़ी । रात को आठ बजे हारी थकी लौटकर उन्होंने मेरी खबर ली । एक हथ-ठेले पर डालकर मुझे वे घर ले गईं तो बाबा से यह सुनकर आश्चर्य चकित रह गईं कि चतुरिया और भाभी रोटी खा-पीकर पूरी-संध्या कर के निकली हैं ।

मां ने पांव से जूती निकाल कर बाबा के सिर पर धड़ाम-धड़ाम मारनी शुरू कर दी।

इस घटना के एक हफ्ते बाद हम सब नानी के साथ अंगीठियों के टोकरे को घेर कर बैठे थे। चर्चा यही चल रही थी कि तरबूजा फोड़ के बाद जलेबी फोड़ कैसा होगा।

नानी विजय-गर्व से बैठी मुस्करा रही थी परन्तु मेरी हड्डियों में इस समय भी दर्द था। तरबूजे का दर्द जलेबी का दर्द।

•

●मोहन सिंह सेंगर

खुशी का एक आँसू

पिता जी की मृत्यु का तार पाकर मैं पहली गाड़ी से घर पहुँचा । रास्ते भर उनकी अनेक मीठी-कड़वी स्मृतियाँ मन को कचोटती रहीं । यद्यपि उनका स्वभाव कुछ कठोर था और घर में उनका नियन्त्रण भी बड़ा कड़ा था फिर भी मुझ और दोनों बहनों को उन्होंने पढ़ा लिखाकर योग्य ही नहीं बनाया था बल्कि सच्चाई-ईमानदारी और सच्चरित्रता का कट्टर आदर्शवादी प्रतिपालक भी बना दिया था । बचपन में कभी-कभी उनकी कड़ाई जरा अखर जरूर जाती थी पर बाद में हम लोगों ने महसूस किया कि कुल मिलाकर उससे हमें लाभ ही हुआ । इसलिए स्नेह और आदर के साथ ही पिताजी के लिए हम सबके मन में एक गहरी आस्था और श्रद्धा का भाव भी था ।

जब टैक्सी घर के सामने जाकर रुकी तो मैंने माँ को बैठक की खिड़की के पीछे खड़े देखा । दूर से लिहाज कुछ तो दिखाई नहीं पड़ा पर ऐसा जरूर लगा कि व शायद रो नहीं रही थीं । टैक्सी वाले का भाड़ा चुकाकर जब मैं अन्दर पहुँचा माँ के पाँव छुए और सिसकते हुए ज्यों ही सजल आँखों से मैंने उनकी ओर देखा तो सहसा मुझे अपनी आँखों पर जैसे विश्वास नहीं हुआ । रोना तो दूर रहा किसी दुःख सन्ताप या व्याकुलता के भाव तक उनके चेहरे पर न थे । इसके विपरीत उनके मुरझाये हुए से चेहरे पर आज ऐसी शान्ति स्थिरता और सजीव गाम्भीर्य विराज रहे थे जिन्हें पहले मैंने कभी भी नहीं देखा था । एक क्षण वे कुछ नहीं बोलीं । फिर अपनी साड़ी के पल्ले से मेरे आँसू पोंछते हुए कहा जाओ हाथ-मुँह धो ले । मैं तब तक

तेरे नाश्ते-पानी की व्यवस्था करती हूँ।" और वे बैठक के भीतर चली गई।

मैं जड़वत् जहाँ का तहाँ खड़ा रहा। पिताजी के निधन की बात तो जैसे भूल ही गई और माँ मेरे सामने एक नई पहेली के रूप में आ गई। इसी समय पास वाले कमरे से किसी के रोने का स्वर सुनाई पड़ा। मैं भारी कदमों से धीरे-धीरे उसी ओर चल पड़ा।

कमरे के दरवाजे पर जाकर ज्यों ही मैं रुका मीरा और जयन्ती ने रोते रोते उठकर मेरी ओर देखा। फिर दोनों मुझसे लिपटकर दहाड़ मारकर रोने लगीं। अब तो मैं भी अपने-आप पर काबू न रख सका और उन्हीं के साथ रोने लगा।

फिर हम तीनों कमरे के बीच में बिछी चटाई पर बैठ गए। मीरा का लड़का और जयन्ती के दोनों बच्चे हमें रोता देखकर बड़े हैरत से देख रहे थे। मैंने उनके सिर पर हाथ फेरा और उन्हें अपने पास ही खिसका लिया। मैं तो चुप हो गया था पर मीरा और जयन्ती अभी भी सिसक रही थीं।

इसी समय माँ ने द्वार पर आकर कहा "क्यों, अभी तक भी खतम नहीं हुआ क्या तुम भाई बहनों का रोना-धोना? आखिर और कितना और कब तक रोओगे? ऐसे रोना ही चाहो तो सारी जिन्दगी पड़ी है। कौन रोकता है तुम्हें रोने से? पर अभी तो उठकर हाथ मुँह धोओ। घर का कुछ काम करो। या तुम लोग भी मुझ अकेली ही से रात दिन नौकरानी की तरह ही सारा काम करवाना चाहते हो?"

यह सुनकर हम तीनों हक्का-बक्का रह गए और जब हमने माँ की ओर देखा, तो वे वहाँ से जा चुकी थीं। आँसू भरी आँखों से हम तीनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा और फिर गर्दनें झुका लीं। मुझसे न रहा गया। जरा धीमे स्वर में मैंने मीरा से पूछा "मीरा, माँ को यह हो क्या गया है? पहले तो कभी वे इस तरह बातचीत नहीं करती थीं।

"क्या बताऊं भैया!" मीरा ने दबी आवाज में कहा "पिताजी

के अन्तिम क्षणों में मैं और जयन्ती ही उनके पास रहे। माँ तो उनके कमरे में भी नहीं घुसी। उन्होंने उन्हें साथ बुलाया, अनुनय-विनय की और कहा कि आखिरी बार तो मुझसे मिल जायें, मैं उनसे माफी माँगना चाहता हूँ, पर वे नहीं गईं—हमारे लाख समझाने-बुझाने पर भी।

यह तुम क्या कह रही हो ? मैंने आश्चर्य से पूछा।

'कहने की अब बात ही क्या है, भैया ! जयन्ती ने रुँधे गले से कहा, 'पिताजी के अनुरोध के उत्तर में माँ ने दाँत पीसकर कहा कि मैं माफ करके इस नराधम को शान्ति और सुख के साथ नहीं मरने देना चाहती। मैं तो इसे मृत्यु के क्षणों में असन्तोष और अभावों की जलन से पल पल तड़पता देखना चाहती हूँ। इसने मेरे जीवन की सुख शांति छीनी है, मेरे सारे सपनों और अरमानों को धूल में मिला दिया है—तो मैं क्या इसकी मृत्यु की सुख-शांति भी न छीनूँ ?'

इस बार आक्रोश से मेरे रोंगटे खड़े हो गए। मीरा ने शायद मेरे चेहरे के भाव पढ़ कर मेरा हाथ दबाया और बोली, 'तुम अपना जी न खराब करो, भैया ! इस समय न कुछ कहना था करना।

'पर दीदी, भैया से कोई बात छिपाने से भी क्या फायदा ? तुम्हीं तो कह रही थी कि पिता जी के बाद अब इस घर के द्वार हमारे लिए सदा को बन्द हो गए।'

अरी, पर मैं कब कहती हूँ कि मैंने यह नहीं कहा।

'छी: छी:' तुम ऐसा क्यों सोचती हो मीरा ? मैं तो अभी मर नहीं गया। मेरा घर तो तुम्हारे लिए सदा खुला है।

यह दूसरी बात है भैया ! मैंने माँ से चिढ़कर यह बात इस लिए कही कि पिता जी के मरने पर हम दोनों बहनें ही नहीं पास-पड़ोस की कई औरतें और मर्द भी रोये पर हैरत है कि माँ की आँखों में एक भी आँसू नहीं आया।

दोनों बहनों की गर्दनें झुक गईं। मैं एक अजीब-से पशोपेश में पड़ गया।

•

मीरा और जयन्ति ने मेरा अनुरोध भी नहीं माना और दूसरे ही दिन अपने-अपने घर चल दीं। जाते समय दोनों ने बड़ा सशंक दृष्टि माँ को देखा और जैसे बड़े अनमने भाव से उनके गले लगकर सिसकते हुए विदा ली। पर माँ बराबर पत्थर की मूर्ति की तरह एकदम कठोर और भावहीन बनी रहीं। दोनों के सिर पर हाथ फेरने के सिवा न तो उनके मुँह से कोई आशीर्वचन निकला न उन्होंने दोनों को कुछ दिन और रुकने को ही कहा। मैं दोनों बहनों से कई वर्ष बाद मिला था, तो मैंने जरूर कहा कि अभी वे दो-चार दिन और रुक जातीं, तो अच्छा होता।

इस पर माँ ने मुझे ही झिड़कते हुए कहा—तू भी बड़ा पागल है। तू तो अकेला है न तेरे घर है न द्वार पर उनके तो अपने घर हैं। बाल बच्चे हैं। कितने दिनों तक बाहर पड़ी रहेंगी वे?

माँ की यह बात सुनकर मैं सुन्न रह गया और मीरा तथा जयन्ती के चेहरों से भी लगा जैसे उन्हें माँ की यह स्पष्टोक्ति बहुत अच्छी नहीं लगी।

अब घर में मैं और माँ केवल दो प्राणी ही रह गए थे। मेरा वहाँ के वातावरण में साँस लेना तक जैसे दूभर हो गया। माँ घर में इधर-उधर घूमती फिरतीं पर मुझसे कुछ भी नहीं बोलतीं। कभी कभी आकर सिर्फ नहाने या खाने का तकाजा कर जातीं। खाने बैठता तो पूरा खाना थाली में एक ही बार में परोसकर बिना पूछे-ताछे सामने रख जातीं और फिर कोई बात नहीं करतीं। उनका यह व्यवहार मेरे लिए दुःखद आश्चर्य से ज्यादा एक असह्य कचोट का कारण बन रहा था।

आखिर, एक दिन मैं पूछ ही बैठा—माँ मैं तो पिताजी के निधन का दुःसंवाद सुनकर यहाँ दौड़ा-दौड़ा आया। पर तुमने कभी मुझसे सीधे मुँह बात भी नहीं की। सन्तान के प्रति जो स्नेह माँ को होना चाहिए, पति के प्रति जो भावना-धारणा पत्नी में होनी चाहिए, वे जैसे तुम्हें छू भी नहीं गई। इतने दिनों से मुझे ऐसा महसूस हो रहा है, जैसे मैं किसी अपरिचित के घर में रह रहा हूँ।

माँ कोई पुस्तक पढ़ रही थी। उन्होंने सामने से पुस्तक हटाकर मेरी ओर देखा और व्यंग से मुस्कराकर फिर किताब पढ़ने लगीं।

मैं कुछ-आवेश में आ गया। पास जाकर मैंने हाथ से माँ के सामने की पुस्तक एक ओर हटाकर जरा ऊंची आवाज में कहा मैं तुमसे कुछ कह रहा हूं माँ दीवार से नहीं। इस सहज भाव से मेरी बात अनसुनी कर आखिर तुम मेरी उपेक्षा क्यों कर रही हो।

माँ ने आँखें सिकोड़ कर मेरी ओर देखा। फिर करुणा और उपेक्षा मिश्रित मुस्कान के साथ बोलीं मगर मान ला तेरी ही बात ठीक हो तो क्या तू मुझे सजा देगा इसके लिए?'

मैंने तनिक धीमें स्वर में कहा यह भला तुम कैसे सोच सकती हो माँ? लेकिन मैं तुम्हारे इस विचित्र व्यवहार का कारण नहीं समझ पा रहा हूँ।

'तो समझने की जरूरत ही क्या है? क्या आदमी दुनिया की सारी बातों को सारे कारणों को कभी समझ भी पाया है या समझ पाएगा?

दुनिया और उसकी सारी बातें जाएं जहन्नुम में। मैं तो अपने घर की इस एक बात को समझना चाहता हूं।

'पर आखिर क्यों?

सिर्फ अपने सन्तोष के लिए अपनी निर्भ्रान्ति के लिए इस गुत्थी को सुलझाना चाहता हूँ।

क्या सचमुच यह इतना आवश्यक है?

हाँ कम से कम मेरे लिये तो है। तुम्हारे लिए चाहे न हो।

'पर तेरे लिए क्यों है? जिसे तेरे पिता जीवन भर समझ नहीं पाए, मैं नहीं समझ पाई आखिर तू ही क्यों इतना उत्सुक है उसे जानने-समझने के लिए?

'तुम तो माँ ऐसी बातें कर रही हो जैसे मैं तुम्हारा कोई हूँ ही नहीं।'

सहज भाव से मुस्कराकर माँ ने कहा हाँ सचमुच तू मेरा कोई भी

नहीं है। तेरी दोनों बहनें और तेरे पिता भी तेरे लिए कोई नहीं हैं। तुम सब मेरे लिए सदा अपरिचित ही रहे हो और आगे भी रहोगे।"

एकबारगी मैं जैसे सकते में आ गया। मेरी दोनों आँखें माँ के चेहरे पर लगी थीं। उनकी नसें तन गई थीं। ललाई बढ़ रही थी। वह क्रमशः कठोर होता जा रहा था। सारा साहस बटोरकर मैंने फिर कहा "माँ तुम तो एक सहज सी बात को भी रहस्य बना रही हो।

मैं भला कहाँ बना रही हूँ? यह तो न जाने कब से स्वतः बना बनाया एक रहस्य ही है। पर तू क्या करेगा जानकर इसे?

मैंने कहा मैं अपनी जिज्ञासा तुम पर पहले ही प्रकट कर चुका हूँ। कैसा भी अप्रिय या कटु सत्य क्यों न हो आज तो तुम्हें बताना ही पड़ेगा। बिना यह सब जाने मैं एक क्षण को भी चैन से नहीं बैठ सकूँगा।

यह कह कर मैं माँ के सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गया। माँ ने एक विलक्षण दृष्टि से एक क्षण मेरी ओर देखा। फिर सहसा उनके चेहरे की तनी हुई नसें कुछ ढीली हुईं। वे बोलीं 'तू तो बड़ा जिद्दी है रे! अब गड़े मुर्दे उखड़वाकर क्यों व्यर्थ परेशान करता है?"

मैं कुछ न बोला। अपलक दृष्टि से सिर्फ उन्हें देखता-भर रहा। उन्होंने हाथ में ली हुई किताब सामने की तिपाई पर रख दी और कहना शुरू किया, "हर व्यक्ति का जीवन एक रहस्य से कम नहीं है। औरत का तो शायद उससे भी कुछ अधिक। पर पतिव्रता से लेकर वेश्यावृत्ति तक के बीच की सीमा-रेखा इतनी सूक्ष्म और अदृश्य होती है कि उसे शायद रहस्य का परदा डालकर भी छिपाया नहीं जा सकता। मैंने होश संभाला उससे पहले ही मेरा विवाह हो गया। जिस जल्दबाजी और जबरदस्ती के साथ वह 'पवित्र संस्कार' सम्पन्न हुआ उससे मुझे विवाह से और भी घृणा हो गई। जो जीवन मैं नहीं जीना चाहती थी जिसके लिए मेरी कोई तैयारी नहीं थी उसी को जीने के लिए मुझे मजबूर किया गया। मैं करती भी क्या? एक नाबालिग बालिका जो अपनी इच्छा के विरुद्ध एक हृष्ट-पुष्ट पुरुष को सौंप दी गई थी।

पहली ही रात बलात्कार से हमारे तथाकथित दाम्पत्य जीवन का श्रीगणेश हुआ। उसकी प्रतिक्रिया तेरे पिता कहलानेवाले व्यक्ति के मन में क्या हुई कह नहीं सकती पर मेरे मन में तो बड़ी बगावत हुई। उसी दिन से मैं उससे घृणा करने लगी—बड़ी गहरी और जह-रीली घृणा!

कुछ समय बाद मैंने जाना कि वह व्यक्ति नपुंसक है। पर ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे पास-पड़ोस की स्त्रियाँ खोद-खोदकर पूछने लगीं। पहला बच्चा कब तक होगा? मैं क्या कहती? सास और ननदों ने मुझे बुरा भला कहना शुरू किया। इसी के साथ आस-पास के हलकों में मुझे बांझ घोषित कर तेरे पिता का वंश चलाने के लिए दूसरे विवाह की चर्चा भी सुनाई पड़ने लगी। फिर कुछ सयानों ने मिलकर सलाह दी कि बहू का इलाज कराओ देवी-देवताओं की मानता बोलो। वह भी किया गया। पर उससे भी क्या लाभ होता? मेरी अजीब हालत थी पर क्या करती?

'उधर तेरे पिता और घर वालों का व्यवहार मेरे प्रति दिनोंदिन कड़ा और रूखा होता गया। घर में मेरा रहना दूभर कर दिया गया था। आखिर कुछ अर्से बाद एक वैद्य से मेरा इलाज कराने का तय हुआ। कभी तेरे पिता या तेरी दादी के साथ मैं उसके यहाँ जाती और कभी वह हमारे घर आता। उसने मुझे देखा भाला तो बहुत पर कोई खास दवा नहीं दी। कई दिनों बाद जब मैंने वैद्य से पूछा कि यह इलाज कब तक चलेगा, तो उसने मुस्काकर कहा जब तक तुम्हारे पति की इज्जत नहीं बचती! मेरी कुछ समझ में नहीं आया। पर दुबारा पूछने पर उसने कहा 'तुम्हें कोई रोग हो तब तो इलाज हो। असल में तो तुम्हारा पति नपुंसक है। अतः उससे तो तुम्हारे कोई सन्तान हो नहीं सकती। अगर तुम चाहती हो कि उसका वंश चले समाज में उसकी मर्दानगी की धाक जमे और तुम्हारी इस घर में शान्ति पूर्वक गुजर भी हो तो तुम्हें किसी भी तरह से कम-से-कम एक सन्तान तो देनी

पड़ेगी। तुम्हें अगर कोई आपत्ति न हो तो मैं। ---' मुझ पर जैसे सहसा आसमान टूट पड़ा। मैं कुछ भी न बोल पाई। उसने आश्वस्त स्वर में कहा 'ऐसी कोई जल्दी नहीं है। सब तय सोच देखना।'

उस दिन मैं सारी रात सो नहीं पाई। मेरी कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या करूँ क्या न करूँ? तेरे पिता ने पूछा कि इलाज कब तक चलेगा तो मैं कुछ भी जवाब नहीं दे पाई। दूसरे दिन जब वैद्य आया तो मैं ओंठों अधर किए खड़ी डरी हुई सी उसे को। उसने नरमी से मेरी ठोड़ी ऊपर उठाकर मेरी आँखों में झाँका और बोला 'आखिर कब तक यह समस्या रहती रहेगी?' मैं कुछ न बोली। उसने मुझे दोनों हाथों से पकड़ कर खड़ा किया और अपनी बलिष्ठ भुजाओं में बाँध लिया। इसके बाद जैसे मैंने अपने होश खो दिए। मेरी कुछ भी समझ में नहीं आया।

पहली सन्तान पैदा हुई। इससे मेरे बाँझपन और तेरे पिता की नपुंसकता का कलंक तो जैसे-जैसे मिटा पर वंश बचाने के लिए दूसरी सन्तान की कामना उनकी बनी रही। लाचार होकर फिर वैद्य का इलाज शुरू हुआ और कुछ महीनों बाद गर्भवती पाई। फिर वही सिलसिला चल निकला। आखिर फिर इलाज शुरू हुआ और वैद्य

[illegible]

सफर दूर हो जा मेरे सामने से। अब तेरा स्थान यहाँ नहीं उस वैद्य के घर में है।

मैं भौंचक रह गई। जिस आदमी की नपुंसकता का कलंक धोने और जिसका वंश चलाने के लिए मैंने अपनी पवित्र नैतिकता और कुन्दन-सा शरीर की बलि दी थी। उसी का यह व्यवहार ! यह बदला ? पर मैं रोई-गिड़गिड़ाई नहीं। मैंने संभलकर उस नर-पिशाच से यही कहा कि मेरा स्थान अगर कहीं है तो यहीं और इसी घर में है। अगर तुम निकालना चाहते हो तो समाज के सामने अपने पाप को स्वीकार करके ही मुझ उस वैद्य को सौंपना होगा। बड़े-बूढ़ों ने मिलकर बात को वहीं का वहीं दबा दिया और कुछ रुपये पैसे देकर वैद्य को कहीं बाहर भेज दिया। इसके बाद से मेरी जिन्दगी इस कीड़े-मकोड़े से बदतर या भिन्न न रही। अगर मैं काफी पढ़ी लिखी होती तो कहीं भी जाकर अपना पेट पाल लेती। पर वैसा कोई विकल्प न होने से मुझे अपमान और उपेक्षा के इसी नरक में रहने को बाध्य होना पड़ा। तेरे पिता ने उस दिन के बाद मुझसे फिर कभी कोई बात नहीं की और मैंने भी उसका दिल जलाने में कभी कोई कसर नहीं छोड़ी। मेरे पास उस नराधम से बदला लेने का और उपाय भी तो नहीं रह गया था। उसके मरने पर अब मैं महसूस कर रही हूँ कि जैसे एक बहुत बड़ा बोझ मेरे मन पर से हट गया है। जैसे मौत से भी ज्यादा खौफनाक एक साया मेरे मन पर से हट गया है। आज सचमुच मैं खुश हूँ।

माँ को खुश देखकर मैंने उन्हें गौर से देखा। उनके चेहरे की नसों का तनाव काफी ढीला पड़ गया था और उनकी पथराई आँखों की कोर पर जैसे खुशी का एक छोटा सा आँसू चमक आया था। उसकी चमक आज मेरी आँखों में एक विचित्र-सी चकाचौंध पैदा कर रही थी।

3

●श्रीगोपाल आचार्य

अपनी-अपनी पसन्द

सरोज की उम्र के साथ ही उसके पिता की चिन्ता भी बढ़ने लगी। उन्हें यह चिन्ता अकेले ही करनी पड़ती थी; कारण उनकी पत्नी का देहांत जब सरोज एक निरीह बच्ची थी तभी हो चुका था। शिक्षित परिवार था। सम्पन्न था। सरोज के सिवाय और कोई उत्तराधिकारी भी उनका नहीं था। सरोज शिक्षित थी और सुसंस्कृत भी। पिता चाहते थे कि वर के चुनाव में उसकी भी सहमति अवश्य हो।

वर की तलाश एक अरसे से जारी थी परन्तु चुनाव सम्पन्न नहीं हो रहा था। पिता की पसन्द के साथ ही सरोज की पसन्द का प्रश्न उठता था। आखिर वह दिन भी आ गया। परन्तु लड़कों ने लड़की को देखे बिना ही करने से इन्कार कर दिया। चित्रों का आदान प्रदान उन्हें अपने निश्चय पर पहुँचाने के लिए काफी नहीं था। सरोज के पिता ने अपनी लड़की को एक तो नहीं बल्कि दो संभावित वरों को साथ-साथ दिखाना स्वीकार कर लिया। प्रबन्ध यह हुआ कि सरोज अपनी एक सहेली के साथ दोनों परिवारों से सम्बन्धित एक परिवार में पसन्द किये जाने के लिए निश्चित समय पर पहुँच जायगी। इस प्रबन्ध से व्यक्ति की भावनाओं पर परिवार की इज्जत पर और भारतीय संस्कृति पर चाहे जो चोट क्यों न पड़ती हो परन्तु यह सब अपना काम पड़ने पर सबको स्वीकार करना ही पड़ता है।

निश्चित समय से पूर्व ही सरोज के पिता सरोज और उसकी एक सहेली तारा पूर्व निश्चित स्थान पर पहुँच गये। उनके पहुँचने

कि थोड़ी देर बाद ही एक युवक आया और उपस्थित कुम्ब से अभिवादन आराम प्रदान करके बैठने के कमरे में चला गया। उसके व्यवहार से यह मालूम होता था कि इस परिवार में इस आगन्तुक का आना-जाना है। मेज पर पड़े अखबार को उसने अभी उठाया ही था कि परिवार की एक महिला तारा के साथ कमरे में आई और मुस्कराते हुए बोली—

'आ गये विनोद बाबू ?

हाँ भाभी !

पर अभी तो समय भी नहीं हुआ है ?

'समय बीतते कोई देर थोड़े ही लगेगी।

'पर, ये आने वाले क्या समझेंगे ?

यही न कि बहू पाने की बहुत अधिक उत्कंठा है, सो तो है ही। और कुछ ? आपकी तारीफ ?

'कुमारी तारा। हमारी सरोज की सहेली है।

'नमस्कार।

'यह 'नमस्कार किस बात का ? तुम पुरुष लोग बहुत चालाक होते हो। यहां भी भ्रष्टाचार और घूस।

'और तुम औरतें पुरुषों के सब भ्रष्टाचार चालाकियों को तुरन्त ही समझ लेती हो क्यों ठीक है न ?

'एक बात पूछूं विनोद बाबू ?

'अवश्य

''ब्याह से पहले लड़कियों को देखने की यह हिमाकत तुम लोगों ने क्यों फैला रखी है ?

भाई साहब से ऐसे प्रश्न का उत्तर अब तक नहीं लिया भाभी ?

'वे बिचारे इस झगड़े में नहीं थे।'

'हमने भी कब किससे कोई झगड़ा किया है ? तुम बिचारे को

भी भाभी जैसी कोई साथिन मिल जाय तो झगड़े की कोई जरूरत ही नहीं।

सरोज तो मुझसे भी अधिक सुन्दर है।

उसे पाने वाला भाई साहब से अधिक सौभाग्यवान होगा।'

तुम सोच क्या रखते हो ?

वह देखने की वस्तु है।

और कुछ ?

और कुछ भी नहीं।

'उससे जीवन चल जायगा ?

मैं तो चला लूँगा।

अपनी शक्ल भी शीशे में देखी है ?

कई बार।

आज ?

आज जल्दी में भूल गया।

मैं कंघा भेज देती हूँ। जरा बाल संवार लो। कपड़े 'साहब' जैसे तो नहीं हैं पर चल जायेंगे।

'भाभी ! सुनो तो।"

मैं चली। 'साहब' आये हैं। उनकी भी परीक्षा होनी है। देखें कौन सफल होता है ? इतना कह तारा के साथ वापिस घर में चल दी।

साहब आये। फेल्ट हैट काला चश्मा रेशमी सूट टाई, चमकते बूट। साथ में दो मित्र। सारे घर को एक नजर में देख डाला। तारा व भाभी पास से गुजरे भी' मगर न सलाम न दुआ। कुछ क्षण विश्राम कर बोले—"नाम सेम्स !' .. कोई है भी ?'

"सब है। आइये। इधर तशरीफ लाइये, साहब।" आवाज विनोद की थी।

ओ हो ! आप हैं, विनोद बाबू ?"

"जी कोई ऐतराज तो नहीं है ? आइये।

'आप भी चाय पीने आये हैं ?

'यदि मिल जाय आपके साथ।

'जरूर।

सब कमरे में पहुँच गये। कुछ ही क्षणों में सरोज के पिता परिवार के मालिक के साथ कमरे में आये। विनोद ने इन आगुन्तकों का अभिवादन किया। परिवार के मालिक ने विनोद व अन्य उपस्थित वृन्द का सरोज के पिता से परिचय कराया। फिर परस्पर में बातें होने लगीं। इसी बीच तारा सरोज व परिवार की एक और लड़की ऊषा कमरे में आई। ऊषा ने परिवार के मालिक हरी बाबू से चाय के लिये पूछा। हरी बाबू ने ऊषा के प्रश्न का कोई जवाब न देते हुए आगुन्तकों का परिचय देना प्रारंभ कर दिया। बोले 'ऊषा मेरी छोटी बहिन सरोज बी०ए० प्रोफेसर पैसवजी की एकलौती पुत्री तारा सरोज की सहेली।"

पूर्वापेक्षुक लड़कों की ओर संकेत करते हुए वे बोले—

विनोद एम०ए० दर्शनशास्त्र गायक वादक पत्रकार कवि साहित्यकार, खिलाड़ी एक स्वस्थ युवक।

मिस्टर हरीश बी० ए० रईस जमीदार बैंकर, मिल एण्ड माइन्स ओनर एक संभ्रान्त व प्रतिष्ठित परिवार के सदस्य।

मिस्टर हरीश के मित्र' इस संक्षिप्त परिचय के बाद हरी बाबू ने ऊषा को सम्बोधित करते हुए कहा—

'ऊषा। ये सब लोग आज हमारे मेहमान हैं सरोज और तारा भी। मैं और प्रोफेसर साहब ऊपर के कमरे में बैठते हैं। तुम इन्हें चाय पिला देना।' साथ ही दोनों व्यक्तियों ने उपस्थित वृन्द से हाथ जोड़ कर आज्ञा ले ली।

ऊषा ने, अपने भाई व प्रोफेसर साहब के कमरे के बाहर चले जाने के बाद, एक गोल मेज पर सजी खाद्य सामग्री पर से आवरण वस्त्र उतार लिया। कुर्सियां इस मेज के चारों ओर पहले से ही

सजी हुई थी। ऊषा के संकेत पर सभी इस पर आकर बैठ गये। सभी ने खाना शुरू किया। हरीश साहब ने सरोज से पूछा—

आपको क्या-क्या शौक है ?"

मैं खाना बनाना पसन्द करती हूँ।

और ?

सिलाई

और ?

"सफाई।

गाना गाना ?

समझ लेती हूँ।

घूमना-फिरना ?

अधिक पसन्द नहीं है।

पढ़ना लिखना ?

'पसन्द करती हूँ।

इतने में ही परिवार का बालक-नौकर चाय लेकर आ गया। ताया ने उठकर जाली का दरवाजा खोला। मगर ज्योंही वह चाय-सामग्री लेकर बढ़ा कि उसका एक पाँव दरी के एक छोर से अटक गया वह गिरा। बर्तन गिरे। चाय गिरी। कुछ गरम छींटे मेहमानों के भी लगे। बालक नौकर तो जैसे पानी से झुलस सा गया। अभी जमीन से उठा भी नहीं था कि एक तमाचा कसकर उसके गाल पर पड़ा। साथ ही सबने सुना—

"हरामजादा उल्लू का पट्ठा बदतमीज। वाणी हरीश साहब की थी।

बालक ने दोनों हाथ अपने दोनों गालों पर रख लिये। क्षण एक के लिए उसने साहब की ओर दीनता में देखा। दो आँसू आँखों

से टपक पड़े। 'साहब बनने चले 'नालायक ! यदि मेरा नौकर होता

हरीश के मुँह से क्रोध शब्द निकल रहे थे साथ ही उसने बालक को अपनी बाहों में ले लिया। एक थप्पड़ प्रसाद के रूप में दे दी।

अब बालक टूटे बर्तन बटोरने लगा। विनोद व लड़कियों ने उसकी मदद की। वह ऊषा के साथ कमरे के बाहर चला गया। ऊषा चाय की नई सामग्री लेकर तुरन्त ही लौट आई। इसके बाद सबने कहा ''जाने दीजिये हरीश साहब ! हरेक से ऐसी गलती हो सकती है। सबने आया चाय पी और पारस्परिक अभिवादन के बाद सब चले गये। सबके चले जाने पर तारा ने सरोज से पूछा—

'वर पसन्द आया ?

'आ गया।

कितने अच्छे बाल थे ?

यह उसके नाई की खूबी थी।

'कितने अच्छे कपड़े थे ?

यह उसके दर्जी की करामात थी।

आलीशान मकान धन-दौलत ?

इन सबमें उस साहब का योग नहीं रहा है तारा। इन सबसे व्यक्तित्व नहीं बनता।

फिर ?

'मेरी पसन्द और ही है। मानव को मानव की सम्वेदना चाहिये। श्रम और सम्वेदना के अभाव में व्यक्ति बड़ा बनता ही नहीं। इसीलिये

''शादी नहीं होगी ?

अवश्य होगी।

'किससे।

'उस साहब' से नहीं?'

"फिर?"

'विनोद बाबू से।

सरोज। साथ ही तारा ने सरोज को पाकर और प्रेम से चूम लिया।

हरीश के परिवार से सूचना आई कि लड़के को लड़की पसन्द है परन्तु उन्हें उत्तर मिला कि लड़की को लड़का पसन्द नहीं है।



● डा० रांगेय राघव

नई जिन्दगी के लिए

हम दो लड़कियाँ थीं। मेरी उम्र उस समय करीब पन्द्रह साल की थी। मैं समझदार थी। अब जब मैं स्वयं तीन बच्चों की माँ हो चुकी हूँ मेरा दृष्टिकोण बहुत बदल गया है पर तब नई उमर थी। तब क्या मैं इतनी अक्ल रखती थी कि असलियत को समझ पाती। लेकिन तुम्हें उसी समय की बात सुनाती हूँ। पन्द्रह साल में ही मुझे काफी काम करना पड़ता था। मेरी माँ को मुझसे बहुत अधिक स्नेह था।

माँ के एक और प्रसव होने वाला था। उनके दो बार लड़कियाँ ही हुई थीं। और एक दूसरी बहिन में समय का इतना कम अन्तर होता था कि उन्हें संभालना काफी कठिन हो गया था। कौन जाने घर में अब भी वही चार साल पुरानी हालत बन रही हो।

मुहल्ले में किसी-किसी के ही घर में नल था। हम सड़क से पानी भर लाया करती थीं। जब मैं नल पर पानी भरने लगी तो ठकुरानी ने पूछा—क्यों तेरी माँ के कुछ होने वाला है?

मैंने सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया। ठकुरानी जरा चुप हो गई। पूछ बैठी—कितने दिन रहे?

मैंने दबी जबान से कहा—जल्दी ही?

ठकुरानी मुस्करा दी। मैं उससे डरती थी क्योंकि उसको लड़ने का अच्छा अभ्यास था और चिल्ला-चिल्लाकर मुहल्ले को उठा लेती थी।

शायद सामने की खिड़की में बैठे हुए लड़के ने मेरी बात सुन ली क्योंकि वह हँस रहा था। मुझे बड़ी लाज लगी हालांकि बात कोई नहीं

हुई थी। मैंने झट से दरवाजा बन्द कर लिया और भीतर आ बैठी।

माँ खाट पर पड़ी सो रही थी। बच्चियों में कुछ सो रही थी, कुछ खेल रही थी।

मुन्नवा मुझसे दो बरस छोटी थी। वह कहीं गई हुई थी। उसके कपड़े आंगन में ही पड़े हुए थे।

बाबूजी दफ्तर में नौकरी कर रहे थे। उनकी तनख्वाह अस्सी रुपये से ज्यादा की नहीं थी। मैंने उन्हें कभी प्रसन्न नहीं देखा। उनके माथे पर गहरी लकीरें पड़ी रहती थीं। मूंछें काली और लम्बी थीं। लोग कहते हैं मैं उन्हीं पर गई हूं।

जब वे दफ्तर से लौटते तब भी वे थके-मांदे दिखाई देते जब आते तब भी उनमें फर्क दिखाई नहीं देता था। इस थकान के कारण उनके होंठों पर एक कातरपन छाया हुआ रहता और उनकी आंखों में एक टिमटिमाती सी चमक दिखाई देती थी। दफ्तर से आते ही वह हमें *एकदम डांटने लगते। मैं रोने लगती।*

हृदय भीतर से घुमड़-घुमड़कर आंखों की राह निकलने लगता पर उन पर इन सबका कोई असर नहीं होता। छोटी-छोटी बच्चियां अपने छोटे-छोटे हाथों से मुख सहलाकर सांत्वना देतीं। उनका मूक आश्वासन बहुत सहायक होता। पर वे बहुत कठोर थे। मैं सोचती हे भगवान! दिन भर काम करती हूं। सब घर संभालती हूं पर मैं नहीं ठीक रहती। मैं सखी-सहेलियों की ओर देखती, जिनके पिता उन्हें प्रेम करते थे। तब मुझे लगता कि मेरे पिता मनुष्य नहीं थे। शायद उनमें हृदय नहीं था। कभी-कभी क्रोध बढ़ने पर मार-मारकर बेहोश कर देते और बच्चियों की कोमल देहों पर नीले-नीले दाग पड़ जाते। जब उनका उठा हुआ मेह चलता ही जाता और बच्चियों की मार से घर कांपने लगता घर में कुहराम मच जाता तब पड़ोस की बुढ़िया दादी का स्वर सुनाई देता—बच्चा पर हाथ उठा रहा है निर्दयी? यह तो कोई रीत नहीं है। अरे तेरे घर में जनम लिए हैं निठुर। निर्दयी बन कर क्यों हत्या कर रहा है?

उस स्वर को सुनकर पिता जैसे चौंक उठते और लौट पड़ते। उनका सिर झुक जाता और वे सूनी आँखों से देखने लगते।

इधर माँ की हालत पहले से भी खराब हो गई थी। वे बाबूजी की मनोव्यथा से पूर्णतया परिचित थीं। आजकल कभी-कभी उन्हें उल्टी हो जाती कभी मन मिचलाने लगता। सिर का दर्द बढ़ गया था। हाथ-पाँव पीले पड़ चले थे। और मैं जब उन्हें देखती सदैव उनकी आँखों में एक भय दिखाई दिया करता था।

बाबूजी दिन भर पूजा करते थे। दफ्तर में भी मुँह में हनुमान गुटका रखते जो बाबा सावनदास ने उन्हें पुत्र होने के लिए दी थी। उन्होंने कहा था इस मन्त्र से कुछ भी बढ़कर नहीं। अगर यह भी काम नहीं देता तो समझ ले तेरे भाग्य में बेटे का सुख भी नहीं लिखा है। पिताजी ने इसे ब्रह्मवाक्य समझकर मन में धारण कर लिया था।

शाम को जब पीपल की खड़खड़ाहट सुनाई देती जब अंधेरे में मन्दिर का गंध भरा धुआँ गली में लोटने लगता और घर के बाहर के उस तिकोने चबूतरे पर आ जाता, एक छोटे-से निवाड़ के खटोले पर मैं बैठी अपनी मझली और नन्ही बहिन को पुचकारती हुई खिलाया करती। कभी कभी तो मुझे फुर्सत मिलती थी। बस उन्हें बुलाया नहीं कि एक छोटे-छोटे पैरों से चलती हुई आती और दूसरी घुटनों के बल सरकने लगती। मुझे दोनों अत्यन्त प्रिय मालूम देतीं। बेचारी उन्हें कोई स्नेह तक करने वाला न था।

नींद मुझे इतनी गहरी आती कि जरा सा लेटते ही सारी सुधबुध खो जाती फिर कोई कितनी ही आवाजें दे सहज में नहीं उठती थी। ठकुरानी मुझसे कहती थी—क्यों पैदा हो गई हो कम्बख्तो! क्या बाबूजी को जिन्दा ही मार डालोगी?

जब मैं यह सुनती तन-मन रुआंसा होने लगता। इसमें हमारा क्या दोष था? पर जब मैं माँ को देखती तो लगता यह सब झूठ था।

माँ की आँखों में दुःख ही दुःख था पर जब मुझे देखती तब उनमें एक सान्त्वना होती। मैं उस दृष्टि की कमनीयता को देखकर माँ की गोद में सिर रखकर उन्हें हँसाने लगती थी। मैं समझती तो थी पर बात की बात असलियत को मुझे अभी तक तोलना नहीं आता था।

ठकुरानी कहती थीं—जानता है? अरे जानेगा नहीं। बीसों बाब जिसे पालने पड़े उसकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं हो जाएगी? एक नहीं रहेगी। उमर ढलने पर सब बस होगी। बेचारे बूढ़े का ठंडा कर जायेगी और उसकी देख रेख करने वाला तक कोई न रहेगा। कहीं किसी ने उसका मुँह ही काला कर दिया तो बेचारे को डूबने तक की ठौर नहीं मिलेगी। राम राम! एक हो दो हो पूरी फौज है। बाप रे, इतना काम करते-करते ही बेचारे के घुटने टूट जाएँगे।

जब ठकुरानी मुझसे ये बातें करतीं तो मैं घर में आकर चुपचाप खाट पर पड़ जाती। तब क्या हमें मर जाना चाहिए?

सदा की भाँति इस बार भी बुआ के घर से पहले ही कुर्ता टोपी आ गए जिन्हें देखकर मैं समझती निश्चय ही अब की बार मेरे एक भाई पैदा होगा। मैंने माँ को दिखाए। शाम को जब पिताजी घर आए तो मैंने खुशी-खुशी जाकर कहा—बापूजी!

उन्होंने पलटकर कहा—क्या है? मैं चुप।

माँ से बापूजी की एक दिन रात की बात मैंने सुन ली थी।

बापूजी कह रहे थे—अगर तुम जैसी अभागिन मेरे घर न आती तो क्यों मेरी जिन्दगी हराम होती। अब वह बुढ़िया तो जिन्दा नहीं है जिसने पहली दो बहुएँ मरने पर हाय हाय करके आ जाता था कि बेटा! ब्याह कर। वर्ना घर का दीप बुझ जाता है। अब जल रहे हैं न चिराग। दिन में भी नहीं सूझती।

उनके स्वर में क्षोभ था। माँ ने धीरे से कहा—यह तो किसी के बस की बात नहीं। जो भगवान् देता है वह तो सब लेना ही पड़ता है। अगर ऐसा ही है तो दो-चार का गला घोंटकर मरने की व्यवस्था कर लो। उनकी जिन्दगी भी हराम करने से क्या मिल जाएगा?

बापूजी कभी यहाँ दौड़ते कभी वहाँ। वे हाँफ रहे थे। उनका मन विक्षुब्ध हो रहा था। मुझे उनको देखकर एक भय होने लगा। ऐसा लग रहा था कि मानो वे किसी के पंख पर चढ़े हुए थे। क्या होने वाला था मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आया। तभी पिताजी का स्वर सुनाई दिया। उन्होंने पुकारकर कहा—दाई आ गई है।

एक बूढ़ी ने भीतर प्रवेश किया। मैं उसे जानती थी। वह हमारे घर अक्सर आती थी और हमारे परिवार की अच्छाइयों और बुराइयों से परिचित थी। बिना मेरी सहायता के ही उसने अपनी राह ढूंढ ली और भीतर के अंधेरे कमरे में चली गई जहाँ टिमटिमाता दीपक जल रहा था।

मैं कभी भीतर जाती कभी बाहर। मेरा दिमाग बिल्कुल बेकार सा हो गया था। दाई ने मुझे देखा तो कहा—जा बेटी! थोड़ी देर जाकर सो रह। तुझे इतनी मेहनत की क्या जरूरत है। जब जरूरत होगी जगा दूंगी।

मैंने उसमें देवी का अंश देखा। वह मुझे अत्यन्त करुणामयी दिखाई दी। डरती-डरती मैं अपनी कोठरी में आकर खाट पर आ पड़ी रही। थकान से शरीर चूर-चूर हो रहा था। पड़ते ही मुझे नींद आ गई।

एकाएक घर में बड़े जोर का शोर हुआ। नींद में पहले तो मैं समझ नहीं सकी। पर जब कोई आकर मेरी खाट से टकराया और गिर पड़ा, तुरन्त मैं जाग उठी। एकदम आँख खोलने से पहले तो मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। पर धीरे-धीरे मैंने पहचाना। वह मुन्नी थी। एक-एक करके सब बच्चियाँ मेरे पास इकट्ठी हो गई थीं।

मैंने फटी हुई आँखों से देखा। जैसे अभी-अभी घरपर हमला हुआ था। मुन्नी फूट-फूटकर रो रही थी। बाकी बच्चियों में से कोई सिसक रही थी कोई डर से चुप हो गई थी। मेरे सिर में दर्द होने लगा। बड़ी कठिनता से मैंने उनको धीरज बँधाया। जब वे चुप हुईं तब मैं उठकर कमरे से बाहर आई। जो देखा उससे जैसे मुझपर अचानक चोट हुई। हृदय टूक-टूक हो गया।

बाबूजी देहलीज पर सिर तोड़ रहे थे। मुझे लगा कि काटने पर भी अब मेरे शरीर से लहू नहीं निकलेगा। घर में एक भयानकता छा गई थी। मैंने माँ के कमरे की ओर पग उठाया। दाई ने मुझे हेरा और दया से मेरी ओर देखा। मैं कुछ भी नहीं समझी। मैंने पूछा—क्या हुआ ?

सुना मेरी एक और बहिन हुई थी।



५

भगवानदत्त गोस्वामी

परिजन

बाहर तेज धूप से तपी धरती पर से आग की लपटें उठ रही हैं। झिलमिलाती गर्मी में अंगारे लिए लूएँ सांय-सांय करती स्कूल की दीवार से टकरा रही हैं। दीवारें भी तप कर जैसे लाल हो गई हैं। अन्दर कमरे में मेज पर टांगें फैलाए बेनीबाबू लेट रहे हैं।

हेडमास्टर से उन्होंने कह दिया है—अपना इन्तजाम कर लें। वे छुट्टी अवश्य जायेंगे। किसी के रोके न रुकेंगे। अब वे स्कूल नहीं आयेंगे—हरगिज नहीं।

बेनी बाबू की गरम देह के अन्दर एक आंधी उठ रही है। उनके सूखे और खुले ओठों में से श्वास प्रश्वास तेज गति से चल रहे हैं। ज्वर से तप्त लाल नेत्रों से वे कभी-कभी स्कूल के कमरे में चारों ओर देख लेते हैं। पास ही उनका शिष्य सोहन खड़ा है जिसका धुंधला चेहरा बेनीबाबू को कदाचित् दिखाई देता है।

बेनीबाबू जान गये हैं कि उनकी अन्तिम घड़ी आ गई है किन्तु सुबह तक तो बिल्कुल ठीक थे। इसलिए सोहन तो इतना ही जानता है कि उन्हें लू लग गई है। शाम तक ठीक हो जाएंगे।

लेकिन वस्तुतः वे महा प्रयाण की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

बेनीबाबू ने अपनी अलसाई आंखों से सोहन की ओर धुंधली दृष्टि डाली और फिर आंखें बन्द करलीं।

विगत जीवन का पूरा इतिवृत्त टूटे हुए क्रम से आज उनके सामने आने लगा।

—बेनी छोटा सा है। मां मर गई है। घर में पिताजी और दादी हैं। वैसे टोले में और स्वजन भी हैं। बूढ़ी दादी अपनी अंधी आँखों से टटोल टटोल कर खाना पका लेती। पिताजी को दादी का पकाया खाना पसन्द नहीं है। अतः वे बाहर ही खाना खाते हैं। कच्चा-पक्का जैसा दादी से पकता है बेनी खा लेता है। दादी पिताजी के लिए रात-रात भर खाना लिए बैठी रहती है पर पिताजी हैं जो सब रात ही घर पर नहीं आते।

दादी का बूढ़ा दिल तड़पता है। पर बेटे पर वे काबू नहीं पा सकी है।

एक दिन दादी का भी अन्तिम दिन आ गया। वह नहीं रही है। बेनी घर में अकेला हो गया है। पिताजी घर पर नहीं आते हैं।

आज भी बेनीबाबू अकेले हैं। भरे घर का कोई उनके पास नहीं। वे दूर बियाबान जंगल के बीच बसे एक छोटे से कस्बे में अध्यापक हैं। करीब पाँच साल पूर्व इस कस्बे में तब्दील होकर आये थे।

चारों ओर के घनघोर जंगल में न जाने कितने ही खूंखार जन्तु रहते हैं। बेनी बाबू को लग रहा है कि जंगल की दूर एक झाड़ी में से निकल कर एक-एक हिंसक पशु आ रहा है और उन्हें खाए जा रहा है। उनके परिवार के लोग दूर खड़े तमाशा देख रहे हैं। पिता विमाता लड़के लड़की और उनकी पत्नी सभी खड़े हैं पर कोई उन्हें हिंसक जन्तुओं से बचाता नहीं।

बेनी बाबू थर-थर काँप रहे हैं-अत्यन्त भयभीत-से।

दादी मर गई है। बेनी का अब कोई सहारा नहीं रहा। पिताजी ने दूसरी शादी की है। पीतवसना नवेली बहू को लेकर वे घर में आये हैं। बेनी दस या ग्यारह वर्ष का है। दादी के पास रहते रहते चाय बनाना कच्ची-पक्की रोटियाँ पका लेना वह सीख ही गया है।

बेनी कमाता है—प्रतिक्षण काता ! माँ की मौत के बाद उसकी देख भाल भी नहीं हुई है । दादी करीब-करीब अन्धी थी—इसलिए उसे सलीका न सिखा सको । अव्यवस्था से रहने के कारण ज्वाले उस पर महापन चढ़ बैठा है इसलिए बेनी और भी असुन्दर है ।

नई माँ गोरी है—संगमरमर सी सफेद । वह बेनी को अपने पास आने नहीं देती । बेनी चाय बनाता है नाश्ता बनाता है और वक्त-बे वक्त घर की रोटियाँ भी पका लेता है । तिस पर भी उसकी नई माँ उससे अप्रसन्न है ।

उस दिन पिताजी ने उसे पीटा है । बेनी की नई माँ ने शिकायत की है कि उसने घी ढुलका दिया । नन्हें हाथों से ऐसी लापरवाही हो ही जाती है । बेनी को पिता के हाथ पिटना असह्य लगा है । वह उसी दिन घर से निकल पड़ा है । वह घूम रहा है—जबलपुर कानपुर इलाहाबाद आगरे होता हुआ जयपुर आ गया है ।

टेबल के नंगे तख्ते पर पड़े बेनी बाबू के दिल का तूफान मानों तेज हो चला है । उनके श्वास-प्रश्वास और भी तेज चलने लगे हैं ।

सोहन ने बेनी बाबू को झकझोरा है । कहा है—बेनीबाबू आपकी तबियत अधिक खराब हो रही है । आप घर चलिए ।

उन्होंने अपनी चेतना लौटा कर सोहन की ओर देखा है, फिर बड़ी कठिनाई से धीरे से कहा—सोहन मुझे अपने कमरे में छोड़ आओ ।

बेनी बाबू इस कस्बे में एक छोटा सा कमरा किराये पर लेकर रहते हैं—बिल्कुल अकेले—स्वजनों से दूर ।

सोहन ने उत्तर दिया है—नहीं बेनी बाबू आज आप अकेले न रह सकेंगे । आपको मेरे ही घर चलना होगा ।

सोहन ने बेनी बाबू को अपनी पीठ पर ले लिया है । कस्बे के एक किनारे बने हुए सरकारी स्कूल तक किसी तांगे या गाड़ी की व्यवस्था इस समय होना मुश्किल है इसलिए सोहन उन्हें पीठ पर ही उठाकर ले चला है ।

सोहन अभी बाबू को उठा कर अपने घर ले आया है। उसने पलंग पर बिस्तर बिछा कर उनको सुला दिया है और स्वयं डाक्टर को लेने डिस्पेन्सरी की ओर चला गया है।

बेनीबाबू ने फिर अपनी भटकी आँखों से सोहन के घर की दीवारों की ओर देखा है। एक भूली-बिसरी स्मृति उनके सामने नाच गई है।

घर से भागा हुआ बनी जबलपुर ठहरा है। वहाँ कोई सलीका न हुआ तो कानपुर आया है फिर झाँसी बनिया इलाहाबाद दिल्ली और आगरे में कुछ दिनों बसेरा किया और जयपुर में आ टिका। लगभग चार पाँच वर्ष यों ही भटक भटकाकर अब वह सतरह-अठारह वर्ष का हो ही गया है। यहाँ आकर वह ट्रैफिक पुलिस में कान्सटेबल लग गया है और सड़क पर खड़ा-खड़ा आने-जाने वालों को रास्ता दिखाता है। लेकिन उसका स्वयं का रास्ता गुम हो गया है।

बेनी हिम्मत से जीवन की गाड़ी को खींच जा रहा है। गाड़ी के पहिये सरलता से चलने लगे। बेनी ने अब कुछ जोड़ लिया है—इतना जिससे कोई साथी जुट सके। जयपुर के पास एक गाँव में उसकी बिरादरी के लोग रहते हैं। वह अवसर अपनी बिरादरी के लोगों में जाता है, बड़े चाव से बातचीत करता है और अच्छा खाता-पीता रह जाता है।

बेनी ने शादी रचाली है—नई दुलहिन विमला को लेकर वह जयपुर से चल पड़ा है और घूमता रहा है। अन्त में वह यहाँ टिका है यहाँ उसके लड़के बच्चे इस कहीं भी सुख की जिन्दगी व्यतीत कर रहे हैं।

अब बेनी स्कूल में मास्टर है—बच्चों को पढ़ाता है। विमला भी यहीं मास्टरनी हो गई है।

बेनी की गाड़ी अब खूब तेजी से चल पड़ी है। उनके (अब हम उन्हें 'उन' ही कहेंगे क्योंकि बेनी अब बड़ा हो गया है। बाल बच्चेदार और घर गृहस्थी वाला) एक लड़का है—रमेश जो अब बी० ए० में पढ़ता है।

लड़की भी है कमला जिसे उन्होंने आगरे ब्याही है।

छोटा लड़का सुरेश है जो दसवीं कक्षा में पढ़ रहा है और जो उनके बराबर ही लम्बा दिखने लगा है।

बेनी बाबू छोटे ही कद के आदमी हैं। जीवन के पिछले दिनों में अपनी गाड़ी को अतिशय कठिनाई से खींचते खींचते उनके दोनों गालों पर गड्ढे पड़ गये हैं आँखें धंस गई हैं और चेहरा स्याह से अधिक स्याह हो गया है। बालों का रूखापन इतना है कि वे भूरे होकर खड़े ही रहते हैं—कभी बैठते नहीं।

बेनीबाबू पिछले पाँच वर्षों में अत्यन्त थक गये हैं।

उन्होंने जो कुछ जोड़ा था वह समाप्त हो गया है क्योंकि उन्होंने शादी की अपने परिवार के रहने के लिये एक मकान भी बना लिया था जिसमें उनका परिवार सुख से रहता है।

बेनीबाबू को घर की दीवारें दिखाई दे रही हैं—लम्बी-लम्बी और सफेद। घर में घुसते ही बैठक है, फिर आंगन रसोईघर पानी की कुण्डी और ऊपर छत पर एक कमरा। ऊपर के कमरे में रमेश रहता है और बैठक में सुरेश।

कमला की शादी में बेनीबाबू ने बनिये से तीन हजार रुपये उधार लिये थे। वे रुपये अब मगर के पेट के समान बढ़ गये हैं। अब तक वे पांच छ हजार तक बन गये हैं!

बेनीबाबू कई माह बनिये का सूद अदा ही करते हैं।

रमेश का खत आया है—बाबूजी रुपया भेजिये। बड़ी जरूरत है। घर में कुछ नहीं है।

बेनीबाबू ने रुपये भेज दिये हैं।

इस बार भी महीने का सूद चुकाया नहीं जा सका है—रमेश के इम्तहान की फीस भरनी थी।

ऐसा कितनी ही दफा हुआ है कि बीच-बीच में आकस्मिक खर्च के कारण बनिये को सूद का रुपया न जा सका।

बेनीबाबू घर पर आते हैं—दो चार दिन की छुट्टियों पर। सुरेश कद में उनके बराबर-सा ही है। उसके कपड़े और जूते उनके बराबर के ही आते हैं। बेनीबाबू के घर में घुसते ही सुरेश ने ट्रंक को ले लिया है और उसे संभाल डाला है। बेनीबाबू ने एक नई कमीज सिलवाई थी वह सुरेश ने ले ली है। बाहर के कमरे में उनके नये जूते पड़े हैं, उन्हें भी वह पहन कर चल दिया है। बेनीबाबू कुछ न बोले।

बेनीबाबू सुरेश की टूटी चप्पल पहनकर वापिस चले हैं। रेल के डिब्बे में बैठते ही उनका दिल पिघल गया है। जीवन में अपनों के साथ क्या कभी न रह सकूंगा। बचपन में माँ चली गई, दादी चली गई, पिताजी के साथ पटी नहीं और अब अपना परिवार बना है तो उसके साथ भी कभी चार दिन भी सुख पूर्वक न रह सकूंगा!

वे रेल के डिब्बे से उतरकर प्लेटफार्म को चीरते हुए बाहर तांगे पर आ गए हैं। तांगे वाले से कहा है—"चलो वापिस। तांगा उनके घर के आगे आकर रुक गया है। विमला ने उन्हें वापिस आया हुआ देखा है पूछा है—वापिस आ गये? ड्यूटी पर न जाओगे?

बेनीबाबू ने कहा है—नहीं, आज नहीं। आज नहीं जाया जाता। मेरा जी नहीं करता बच्चों को छोड़ने को।

विमला गुस्से में हो गई है—कैसा पागलों का-सा ढंग है। स्टेशन जाकर कोई क्या वापिस आता है? महीने का पहला सप्ताह चल रहा है। तनख्वाह आयगी तो सूद का चुकता कर देंगे। बच्चों के कपड़े नहीं हैं। वहां पहुंच कर रुपये भेज देंगे तो सिलवा दूंगी। आपका आज ही वापिस लौट जाना निहायत जरूरी है। बेनीबाबू दुःखी हो गये हैं। सोचने लगे हैं। रमेश जब पत्र लिखता है तो रुपयों की बात लिखता है—उनके सेहत स्वास्थ्य की कभी नहीं पूछता विमला को सूद चुका देने की चिन्ता है लड़के के कपड़ों की भी किन्तु उनकी नहीं। और केवल वह है जो इन सबकी चिन्ता के लिये है। एक दुस्सह भारी भरकम गठरी उठाये वह चल रहा है जीवन की टेढ़ी मेढ़ी राह पर।

बनी वापिस स्टेशन चला गया है। गाड़ी पर चढ़ कर गुम-सुम लौट आया है।

आज उनके शरीर में असह्य पीड़ा है। उनसे करवट भी बदली नहीं जाती। एक क्षण के लिये उनके आगे की फिल्म 'फेड' हुई दूसरे ही क्षण नई तस्वीर सामने आने लगी।

कमला बेटी का आगरे से खत आया है—पिताजी इनकी नौकरी छूट गई है। कोशिश में हैं कि शीघ्र ही कोई जुगत बैठ जाय। तब तक के घर खर्च के लिये सौ रुपये भेज दीजिये।

बनी बाबू ने एक मित्र से उधार लेकर सौ रुपये कमला को भेज दिये हैं। बेचारी अबला लड़की किसके द्वार हाथ पसारने जायगी।

बनीबाबू को जैसे संतोष हुआ। उनके सूखे ओठों पर अनजाने ही मुस्कराहट दौड़ गई।

रमेश का फिर खत आया है—बाबूजी बनिया रुपयों के लिये बहुत तंग करता है और मकान नीलाम कर देने की धमकी देता है। आप आकर उसका इन्तजाम कर जाइये।

वे दूसरे ही दिन चलकर घर आ गये हैं बनिए के पास जाकर बातचीत की है। उसका कहना है—सूद का रुपया चढ़ गया है, खत की अवधि भी समाप्त हो गई है। नया खत करवाइये अन्यथा रुपया सूद सहित चुकता कर दीजिये।

बनी बाबू के पास रुपया नहीं है इतना रुपया कभी होगा नहीं। अतः मजबूरन उन्होंने मूल में सूद को जोड़कर नया खत लिख दिया है। पिछली दफा जब लिखा था तो तीन हजार का भार हुआ था और अब चार का छः बन गया है।

वे वापिस आ गये हैं।

उनकी तबियत आजकल ठीक नहीं रहती। सुबह शाम दोनों वक्त इस भयंकर गर्मी में उनसे हाथ से खाना पकाया नहीं जाता। इसलिए आजकल ठण्डा-बासी खाकर चला लेते हैं। कभी कभी तो दो-दो दिन तक चना-चबैना पर ही गुजार लेते हैं।

बेनीबाबू घर पर आये हैं—दो चार दिन की छुट्टियों पर। सुरेश कद में उनके बराबर-सा ही है। उसके कपड़े और जूते उनके बराबर से ही आते हैं। बेनीबाबू के घर में घुसते ही सुरेश ने ट्रंक को ले लिया है और उसे संभाल डाला है। बेनीबाबू ने एक नई कमीज सिलवाई थी वह सुरेश ने ले ली है। बाहर के कमरे में उनके नये जूते पड़े हैं, उन्हें भी वह पहन कर चल दिया है। बेनीबाबू कुछ न बोले।

बेनीबाबू सुरेश की टूटी चप्पल पहनकर वापिस चले हैं। रेल के डिब्बे में बैठते ही उनका दिल पिघल गया है। जीवन में अपनों के साथ क्या कभी न रह सकूंगा। बचपन में मां चली गई भाभी चली गई, पिताजी के साथ पटी नहीं और अब अपना परिवार बना है तो उसके साथ भी कभी चार दिन भी सुख पूर्वक न रह सकूंगा।

वे रेल के डिब्बे से उठकर प्लेटफार्म को पीछे छोड़ते हुए बाहर आये पर आ गए हैं। तांगे वाले से कहा है—"चलो वापिस।" तांगा उनके घर के आगे आकर रुक गया है। विमला ने उन्हें वापिस आया हुआ देखा है पूछा है—वापिस आ गये? ड्यूटी पर न जाओगे?

बेनीबाबू ने कहा है—नहीं आज नहीं। आज नहीं जाया जाता मेरा जी नहीं करता बच्चों को छोड़ने को।

विमला गुस्से में हो गई है—कैसा पागलों का-सा ढंग है। स्टेशन जाकर कोई क्या वापिस आता है? महीने का पहला सप्ताह चल रहा है। तनख्वाह आ जायगी तो घर का गुजारा कर देंगे। बच्चों के कपड़े नहीं हैं। कल वहां पहुंच कर रुपये भेज देंगे तो सिलवा दूंगी। आपका आज ही वापिस लौट जाना निहायत जरूरी है। बेनीबाबू दुखी हो गये हैं। सोचने लगे हैं। रमेश जब पत्र लिखता है तो रुपयों की बात लिखता है—उसके सेहत स्वास्थ्य की कभी नहीं पूछना विमला को घर चला लेने की चिन्ता है लड़के के कपड़ों की भी किन्तु उसकी नहीं। और केवल वह है जो इन सबकी चिन्ता के लिये है। एक दुस्सह भारी भरकम गठरी उठाये वह चल रहा है जीवन की टेढ़ी-मेढ़ी राह पर।

बनी बापिस स्टेशन चला गया है। गाड़ी पर चढ़ कर गुम-सुम लौट आया है।

आज उनके शरीर में असह्य पीड़ा है। उनसे करवट भी बदली नहीं जाती। एक क्षण के लिये उनके आगे की फिल्म फेड' हुई दूसरे ही क्षण नई तस्वीर सामने आने लगी।

कमला बेटी का मायके से खत आया है—पिताजी इनकी नौकरी छूट गई है। कोशिश में हैं कि शीघ्र ही कोई जुगत बैठ जाय। तब तक के घर खर्च के लिये सौ रुपये भेज दीजिये।

बनी बाबू ने एक मित्र से उधार लेकर सौ रुपये कमला को भेज दिये हैं। बेचारी अबला लड़की किसके द्वार हाथ पसारने जायगी।

बनीबाबू को जैसे संतोष हुआ। उनके सूखे ओठों पर अनजाने ही मुस्कराहट दौड़ गई।

रमेश का फिर खत आया है—बाबूजी बनिया रुपयों के लिये बहुत तंग करता है और मकान नीलाम कर देने की धमकी देता है। आप आकर उसका इन्तजाम कर जाइये।

वे दूसरे ही दिन चलकर घर आ गये हैं बनिए के पास जाकर बातचीत की है। उसका कहना है—सूद का रुपया चढ़ गया है खत की अवधि भी समाप्त हो गई है। नया खत करवाइये अन्यथा रुपया सूद सहित चुकता कर दीजिये।

बेनी बाबू के पास रुपया नहीं है इतना रुपया कभी होगा नहीं। अत: मजबूरन उन्होंने मूल में सूद को जोड़कर नया खत लिख दिया है। पिछली दफा जब लिखा था तो तीन हजार का चार हुआ था और अब चार का छः बन गया है।

वे वापिस आ गये हैं।

उनकी तबियत आजकल ठीक नहीं रहती। सुबह शाम दोनों वक्त इस भयंकर गर्मी में उनसे हाथ से खाना पकाया नहीं जाता। इसलिए आजकल ठण्डा-बासी खाकर चला लेते हैं। कभी कभी तो दो-दो दिन तक चना-चबेना पर ही गुजार लेते हैं।

महीने की पहली तारीख को अपने लिये बिल्कुल अल्प-सा बचा कर शेष सब तनख्वाह घर भेज देते हैं।

बेनीबाबू का स्वयं का लगाया हुआ एक पौधा है जिसे वे खून से सींच रहे हैं।

बेनीबाबू के पिता बूढ़े हैं। उनकी नई बीवी के तीन लड़के और दो लड़कियां हैं। इस बार पिताजी ने बेनी बाबू को बुलाया है। बेनीबाबू चले गये हैं। पिताजी ने कहा है—पुरानी बातें भूल जाओ बेटा ! ये देखो तुम्हारे छोटे भाई बहन हैं इन्हें अपने भाई-बहन समझो।

बेनीबाबू की आंखों से आंसू छलक आये हैं। उन्होंने अपने भाई बहनों को देखा है। एक स्नेह का सागर जैसे उनके दिल में उमड़ पड़ा है।

भाई-बहनों को कुछ दे दिला कर बेनी बाबू फिर अपनी जगह पर आ गये हैं।

कुछ समय गुजरा है। बेनीबाबू को पिताजी का खत फिर मिला है। उन्हें फिर बुलाया है लिखा है—इस बार घर में खरच आन पड़ा है। तुम्हें मदद करनी होगी।

बेनीबाबू की विमाता की सबसे बड़ी लड़की की शादी थी।

पिताजी के खत पर उन्होंने कुछ रुपये जुटाकर भेज दिये हैं। स्वयं भी समय पर पहुंचूंगा ऐसा भी सूचित किया है।

बेनीबाबू थक गये हैं। सर पर लिया हुआ कर्जा बढ़ता जा रहा है। एक तरफ वे उसे चुकता कर देने की कोशिश करते हैं दूसरी तरफ दूसरे खरच आकर उन्हें घेर रहे हैं। उनके जीवन की गाड़ी डांवाडोल हो रही है।

वे अपनी बहन की शादी में गये हैं। बाजार से बहुत-सा कपड़ा उधार उठा लिया है—भाइयों के लिये विमाता के लिए और छोटी बहन के लिए। रुपया भी कुछ साथ ले लिया है।

टूटा हुआ बदन है उनका। बहुत थकावट के कारण उनके पैर

अब सीधे नहीं पड़ते हैं। एक अज्ञात प्रेरणा भाव उन्हें अपने परिजनों के बीच में ला रही है। अब शायद बेनीबाबू उनके पास फिर कभी न आ सकेंगे यह शायद उनका अन्तिम मिलन होगा। जो कुछ वे साथ अपने परिवार वालों के लिये ले जा रहे हैं, वह भी उनकी अन्तिम ही भेंट होगी। बेनीबाबू अपने अन्तर में एक महान् तृप्ति महसूस कर रहे हैं।

पिता के घर पहुँच कर बेनीबाबू परिवार के सब लोगों से मिले हैं। उनके चचेरे भाई हैं भाभियाँ हैं छोटे भाई बहनें और बिरादरी के और दूसरे लोग। उन सब से मिलकर बेनीबाबू बहुत प्रसन्न हुए हैं।

वे परिवार की इस मृ बसा से छूटकर अब अपने निज के परिवार में आ गये हैं जहाँ उनके अपने बच्चे हैं। विमला लड़कियों के कैम्प में गई हुई है। बेनीबाबू ने सन्देश भिजवाया है—मैं आया हूँ तुमसे मिलकर चला जाना चाहता हूँ। एक दिन की छुट्टी लेकर चली आओ।

कैम्प से उत्तर प्राप्त हुआ है—छुट्टी नहीं मिल रही। आप वापिस चले जाइये। इस बार दुबारा आयेंगे तो मिल लूँगी। बेनीबाबू निराश हो गये हैं। वे विमला से मिल कर ही जाना चाहते थे। किन्तु विमला न आई!

रमेश ने कहा—बापूजी, जाते ही रुपया भेज दीजियेगा। उसके बिना घर का काम एक दिन भी आगे न चलेगा।

सुरेश ने उनके नये कपड़े फिर ले लिये और कमला के लिए उन्होंने पैंतिस रुपये का मनिआर्डर कर दिया। बेनीबाबू आँगन में खड़े अपनी सूनी आँखों से घर को देख रहे हैं। विमला लड़कियों के कैम्प में गई हुई है। लड़के मानसी हो रहे हैं। घर में ढेर सारे कपड़े मैले पड़े हैं।

बेनीबाबू के बदन में ताकत नहीं है तो भी वे कपड़े लेकर नल के नीचे उन्हें धोने बैठ गये हैं और धो-धाकर छत पर सुखा आये हैं।

रमेश धुली कमीज पहन कर चला गया है।

सुरेश ने भी अपने कपड़े संभाल लिए हैं। पर बेनीबाबू अब तो स्वयं का केवल एक ही कमीज है जिसे वे अपने बदन पर डाले हुए हैं।

उन्हें आज शाम की ही गाड़ी से वापिस चले जाना है। क्या ही अच्छा होता विमला उनसे मिलकर चली जाती। फिर वे घर की सूनी दीवारों को देखने लगे हैं सोचने लगे हैं—घर को बसा लेने की दौड़ में वे थक रहे हैं और नष्ट हो रहे हैं। पर यह घर है जो रहेगा भी या नहीं।

बेनीबाबू ने करवट बदली है।

असह्य पीड़ा के मारे उनके मुंह से कराह निकल गई।

सोहन डाक्टर को लेकर आ गया है। डाक्टर ने नब्ज देखी है। केस सीरियस है। बचने की आशा बहुत कम है।

बेनीबाबू ने आँखें खोल दी हैं। बुझते हुए दीपक की लौ की तरह उनमें चेतना जैसे जाग उठी है।

डाक्टर ने उनकी ओर मुस्करा कर पूछा—कहिये कुछ कहना चाहते हैं? बेनीबाबू ने स्थिर हो कर डाक्टर की ओर देखा फिर स्फुट शब्दों में कहा—और तो कोई बात नहीं डाक्टर साहब किन्तु इस अन्तिम बेला में आज मेरे परिजन यहाँ होते तो!

सोहन की आँखों में आंसू छलक आये। उसने बेनीबाबू के पास आकर कहा—मैं तो हूं आपके पास बाबू जी!

बेनीबाबू ने सोहन की ओर देखा और फिर आँखें मूंद लीं।



●भुमर सिंह दइया

भूखी डायन

मारे गांव में चर्चा का केवल एक ही मुख्य विषय है। जहां कहीं भी दो चार व्यक्ति इकट्ठे हो जाते हैं—बस उसी पर घूम फिर कर बातचीत आरम्भ हो जाती है। पनघट घाट खेत खलियान आदि कोई भी सार्वजनिक स्थान ऐसा नहीं है जहां बड़ी संजीदगी के साथ वार्तालाप नहीं हो रहा हो। सब चिन्तित हैं। दुर्भाग्य से बड़ा भयंकर संकट आ पड़ा है।

जम्मू चौधरी की चौपाल में गांव के प्रमुख व्यक्ति चिन्तातुर अवस्था में बैठे परस्पर विचार-विमर्श कर रहे हैं। ताजा भरा हुआ हुक्का आ गया। सबसे पहले गांव के सम्भ्रान्त ठाकुर जोरावर सिंह ने उसे सम्भाला। इसके बाद भैरू काका ने उसकी नै पकड़ी। एक ओर मुंह लटकाये रामेश्वर पहलवान बैठे हैं। बदन पर रामनामी चादर ओढ़े पंडित रामभज भी पालथी मारकर बैठे हैं। हाथ में गोमुखी है और माला का जाप चल रहा है।

ठाकुर साहब ने इस गम्भीर वातावरण के बोझिल मौन को भंग करते हुए कहा— 'भई जम्मू! हमें तो इस पहलवान पर खेद है। हमें क्या पता था कि यह इतना डरपोक निकलेगा।

सबकी नजरें उठकर पहलवान पर जम गईं। वह लजाकर सकुचा गया। आत्म-ग्लानि की मलिन छाया से उसका चेहरा उतर-सा गया।

पहलवानी के दांव-पेच केवल आदमियों के साथ किये जाते हैं न कि किसी जिन्न भूत या डायन के संग। अंधेरी रात में डोलती छाया

को देख पहलवान का डरना स्वाभाविक है। पहलवान की दयनीय स्थिति देख चम्पू ने सकरुण स्वर में कहा।

सब के होठों पर हल्की-सी विद्रूप भरी हंसी फैल गई।

अब वे मुख्य विषय पर आ गये।

श्मशान घाट पर नई डायन का होना गांव के लिए बहुत बड़ा अपशकुन है पता नहीं कब मुसीबत आ पड़े।

परसों रात ममता की माँ और मम्मू की मामी जंगल को गई थी। उन्होंने वहां भी एक काली छाया-सी देखी। वे डर कर बेहोश हो गईं।

और ये सब तो हम सुन चुके हैं। रोज कोई न कोई दुर्घटना होती रहती है। अब क्या उपाय किया जाए—इसी पर विचार करना है। ठाकुर साहब गंभीरता से बोले।

किसी सयाने-ओझे को बुलाकर मंत्रों से गांव को बंधवा देना चाहिए ताकि डायन गांव में न आ सके। चम्पू ने यह क्रान्तिक सुझाव रखकर समर्थन दृष्टि से शेष व्यक्तियों की ओर निहारा।

'चम्पू! आजकल ऐसे सयाने-ओझे मिलने कठिन हैं। पहले वाला समय थोड़े ही है जो एक ढूंढो तो हजार मिल जाएं। बड़े नेम धरम के बाद ऐसी सिद्धि प्राप्त होती है। —नैपू काका ने सोचकर उदास कण्ठ से कहा।

यह सब तो ठीक है फिर भी हमें कोशिश तो करनी चाहिए। चम्पू ने प्रतिवाद किया।

'हां। हमें खोज करनी चाहिए।' पंडित रामभज ने समर्थन में सिर हिला दिया।

अब सबने एक स्वर से इस सुझाव का अनुमोदन कर दिया। रह गये केवल केशू काका जिन्होंने अब आपत्ति करना उचित नहीं समझा। उनका मौन सहमति का सूचक था।

निर्णय लेने के बाद यह छोटी-सी सभा विसर्जित हो गई। उनका चित्त अब हल्का और प्रसन्न है—जैसे एक भारी बोझ उनकी छाती पर से उतर गया है।

× × ×

जग्गू ने चिलम भरी और इतमीनान से पीने लगा।

इतने में दूर से लाठी टेकती हुई खाली टोकरी लिये दादी माँ आती दिखी। साठ बरस की बुढ़ा। झुर्रियों से भरा चेहरा जिसकी प्रत्येक रेखा में थकान व क्लान्ति की मार्मिकता भरी पड़ी है। हृदय द्रावक कातरता से अभिभूत उसकी वे बूढ़ी आँखें जो बकरी के मजार के समान निस्तेज हैं। उसकी कृशकाया से स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि इसने जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव देखे हैं। अनेक कष्टों व मर्मभेदित आक्षेप का इसे सामना करना पड़ा है। यह वेगवती लहरों के सदृश उमड़-घुमड़ कर आता रहा और तट से टकरा-टकरा कर उसे तोड़ता रहा—तोड़ता रहा। इन संघर्षों के भंवर में पला है उसका यह जीवन जिसकी प्रत्यक्ष छाप उसके अंग-अंग पर मौजूद है। भाग्य ने भूलकर कभी उस पर दया तक नहीं की।

दादी माँ!

हाँ बेटा!'

'उपले बेचने क्या कस्बे में गई थी?

'हाँ।

फिर आकर दूध ले जाना। समझी।

अच्छा।'

बुढ़िया का स्वर अचानक आर्द्र हो गया।

जग्गू! तू मेरे जमिये के मरने के बाद से कितना ख्याल रखता है। भगवान तेरा भला   भा   ला'   ।

परन्तु उसका यह आशीर्वाद पूरा नहीं हुआ और बीच में खाँसी आकर बाधक बन गई।

खाँसी !

प्राणांतक खाँसी !

जम्मू का हृदय इस असहाय और निर्बल बुढ़िया के प्रति संवेदना से भीग गया। बेचारी का अपना कहने लायक इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। उपली बेचकर अपनी जीविका चलाती है। यद्यपि सदैव का रोगी शरीर कभी-कभी बाधा उत्पन्न कर देता है परन्तु उसकी आत्म-शक्ति इतनी बलवान है कि उसे आश्चर्य-जनक गति से काम में लगाए रखती है। किसी ने खाली बैठे तो उसे देखा तक नहीं—कुछ न कुछ करती ही रहती है—चुपचाप और मनोयोग पूर्वक।

× × ×

जम्मू ने आसमान की ओर देखा। सम्भवतः आधी रात बीत चुकी है। कृष्ण-पक्ष का पतला-दुबला चाँद अपनी धुंधली और मलिन चाँदनी में लिपटा ऊपर अम्बर में टंका है। आकाश-गंगा का दूधिया रंग खूब गहरा हो गया है।

आज जम्मू को कस्बे की मंडी से लौटने में देरी हो गई। वह हाथ में लाठी सम्भाले आगे बढ़ रहा है लेकिन दो राहे पर आकर वह अचानक रुक गया। एक समस्या सामने आ गई। उनमें से एक रास्ता बड़ के पेड़ के पास से सीधा जाता है और दूसरा बीहड़ वन में से गुजरता है। यद्यपि पहले वाला रास्ता भी कम खतरनाक नहीं है। वह श्मशान घाट के समीप है जहाँ सत्यानाशी शासन का आतंक छाया हुआ है। जम्मू थोड़ी देर के लिए चिंतातुर हो उठा मगर उसने शीघ्र ही निर्णय कर लिया। बजरंगबली का नाम लेकर वह सीधे रास्ते पर चल पड़ा।

छोटी तलैया के पास ही श्मशान है। इसका पानी केवल जान-वरों के पीने के काम आता है। यह चारों ओर से झड़बेरी बबूल और नीम के पेड़ों से घिरी है। रात में उल्लू मनहूस आवाज में चीखा करते हैं। दिन भर गीदड़ और मरियल कुत्ते निर्द्वन्द्व घूमते रहते

है। अक्सर वे जमीन खोदकर गड़े हुए बच्चों की लाशें बाहर निकाल लाते हैं।

गीदड़ की भयपूर्ण चीख सुनकर जग्गू जहां का तहां रुक गया। उसने श्मशान घाट की ओर देखा लेकिन कुछ भी नजर नहीं आया। आंखों के आगे अंधेरे की अभेद्य दीवार-सी खड़ी है। तभी उस निस्तब्ध वातावरण में उल्लू की चीख भी सनसना उठी। जग्गू के हृदय की धड़कन जैसे एक दम बन्द सी होने लगी। अपनी कंपकंपाती आंखों से उसने पुनः देखा। इस बार घाट पर एक काली छाया-सी डोलती नजर आई। आज सुबह ही एक मुर्दा जलाने के लिए लाया गया है अतः डायन का वहां होना प्रायः निश्चित है।

अब वह काली छाया अचानक घूमी और धीरे-धीरे जग्गू की ओर आने लगी— अब? जग्गू कांप उठा। हाथ से लाठी छूट गई। पसीने की धारायें सारे बदन में फैल गईं और

मौत!

साक्षात् मौत!

यम की भयानक आकृति जग्गू की आंखों में घूम गई। अब पलकें बंद। रक्त की गति निस्पंद, जैसे वह थम गया है। उस के पैर जड़ गये। वह खड़ा रहा बिल्कुल निश्चेष्ट और जड़ होकर

× × ×

अचानक हल्की-सी नारी कण्ठ की करुण चीख सुनकर जग्गू चौंक पड़ा। मानव-मन में प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। उसने आंखें खोलीं; मगर सहसा कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा। उसने पुनः प्रयास किया। अब धुंधली-सी आकृति नजर आई। सम्भवतः वह राह में पड़े किसी पत्थर से ठोकर खाकर गिर पड़ी है। उसके आर्त-स्वर में पता नहीं कैसी मार्मिकता है कि जग्गू उसके पास खिंचकर चला गया। भय व आतंक की वह अशुभ छाया न मालूम कैसे उसके प्राणों में से तिरोहित हो गई?

घुटनों के बल बैठकर उसने औरत के सिर को उठाया। हाथ में पकड़ी हुई पोटली को उससे दूर करना चाहा लेकिन उसे मजबूती से पकड़ लिया।

"आह! —इस हृदय-विदारक कराह के साथ उस औरत ने अपना मुंह मोड़ा तो बग्गू पहचान कर दंग रह गया।

'अरे, दादी माँ!'

कौन? —वृद्धा घबरा सी गई।

यह तो मैं हूं बग्गू!

'ओह" !'

वृद्धा का स्वर एक-दम बुझ सा गया।

'तुम यहाँ क्यों आई हो दादी माँ? —बग्गू ने हैरानी से पूछा। साथ ही उसकी आँखों की पुतलियाँ तीव्र जिज्ञासा लिए स्थिर हो गईं।

अब दादी माँ सहसा कांप उठी। गर्त-ग्रस्त आँखों में आँसू भर आये और धीरे-धीरे वह सिसकने लगी। उसने कुण्ठित स्वर में कहना आरम्भ किया— बेटा! अब तुम से क्या छिपाऊं? यह भूखा पेट क्या नहीं कराता? उपले कम ही पाए पाती हूँ—गुजारा नहीं चलता" इसलिये मैं श्मशान घाट से बुझे हुए कोयले ले जाकर इन्हें मैं बेचती हूँ" ।

और वृद्धा विषाद पूर्ण कण्ठ से रोदन करने लगी।

बग्गू तो सुनकर स्तब्ध रह गया। क्या यही उस डायन का रहस्य है?



● ओमानन्द रू० सारस्वत

आत्महत्या से पहले लिखे

आत्महत्या से पहले लिखे इस पत्र को पढ़ कर कांप-सा गया हूँ। पुलिस अफसर हूँ लेकिन पत्र की सच्चाई को महसूस कर रहा हूँ। त्यागपत्र के एम० इमाम' की भाँति अपने पद से त्यागपत्र देने में ही मुझे संतोष नहीं होगा सोचता हूँ मैं तो मानवता से ही त्यागपत्र दे दूँ किन्तु पता नहीं कौन सी शक्ति है जो मुझे ऐसा करने से रोक रही है और इस पत्र को बार बार मेरी स्मृति में लाकर मुझे 'धन' को संसार से नेस्तनाबूद करने के लिये उत्तेजित कर रही है। एक महान् उत्तरदायित्व मेरे कंधों पर कोई रख रहा है। मैं इस जिम्मेदारी से भागना नहीं चाहता हूँ न भाग ही रहा हूँ आप भी कुछ सहारा देकर मेरे निर्बल कंधों में ताकत आने का हौसला देंगे, केवल इसीलिये यह बात आप के सामने रख रहा हूँ।

जब यह पत्र पोस्ट द्वारा मेरे ऑफिस में पहुँचा तो शाम के तीन बज चुके थे और मेरे हाथों में पहुँचते-पहुँचते सवा तीन हो गये होंगे। मैंने एक्सप्रेस डिलिवरी के शब्दों को देखते ही लिफाफा फाड़ कर पत्र खोला पढ़ा कांपा, और अपने अध्ययन के कक्ष की एक प्रयोगवादी पत्रिका में छपी ये कविता साकार हो गई—

सारे विश्व की बस एक ही तो मर्ज है—टका ?
कि करो मोहब्बत किसी से
झूठी है तो टका झूठ की
सच्ची है तो सत्य में पाक पाओगे।
कि यह जहां कृत्रिम आकाश की और छाती का
सितारे का वहम बहता

धंधा मानुमान का है
सफलता विज्ञान की संचित यहाँ
किसी को प्रलय की
सफलता विज्ञान की संचित यहाँ
किसी को प्रलय की शंका तो सुविधा शांति का ।

ये दो उदाहरण तो बस उदाहरण के लिये हैं केवल
दुनिया के जर्रे जर्रे में तुम ढूंढो
हर वक्त हर दिन पर दिखाई देगा
सारे विश्व का बस एक ही मर्म है—धंधा ।

मुझे स्पष्ट याद है कि पत्रिका का नाम 'ईटप्पूगा' था लेखक का नाम भूला जा रहा हूँ, किन्तु कविता की बोर्डर पर जो चित्र छपा था वह नहीं भूल पा रहा हूँ—ओह भयानक चित्र ? एक वीभत्स विचित्र आकृति का राक्षस एक इंसान के मासूम से दिल को अपनी कठोर दाढ़ों में चबा रहा था' और नहीं कहा जाता बड़ा जबर्दस्त दिल को कंपा देने वाला चित्र था ।

और उसी चित्र को और अधिक रंगीन बना देने वाला यह पत्र । कुछ स्थितियाँ ही ऐसी बन गई लगती हैं कि दोनों में बड़ी समानता मुझे दिखलाई पड़ रही है। मैं इसी कारण आपके सामने यह पत्र ऐसा का ऐसा रख रहा हूँ शायद आपके दिल पर भी प्रभाव पड़े और आप भी उसी लाइन पर सोचने लगें जिस पर मेरा दिमाग सोच रहा है । पत्र ये है —

एकामत

कमरा नम्बर—२१
बसालगाड़ी, कृष्णपुरी
पुर ।
१२।७६

सेवा में
पुलिस अधिकारी,
थाना
…पुर।

प्रिय महोदय

यह पत्र जब तक आपके हाथों में पहुँचेगा, तब तक मैं इस दुनिया से उठ चुका हूंगा इसलिये सब से पहले अपना परिचय दे देना चाहता हूं। अमर्ष हूं ग्रेज्युएट हूं और अपने किये हुए, बनाये हुए कुछ सिद्धान्तों पर चल रहा हूं आज तक। विशेष रूप से नैतिकशुद्धि की पवित्रता का हामी रहा हूं और कोशिश भी की है कि वचन तक ही सीमित रखूं प्रेम की बातों को कर्म या क्रियाशीलरूप से हजारों कोस दूर रहूं। लेकिन थक गया हूं इस पक्षपातीन दुनिया से जूझने की ताकत नहीं रही—अतः बलि हो रहा हूं एक मकसद के लिये। यह जानते हुए भी कि मेरे बलिदान होने से मैं दुनिया में से 'शक' को मिटा नहीं सकूंगा फिर भी संभवतः कुछ छोटे दिमागों को विस्तार पाने का रास्ता ढूंढने पर सोचने को मजबूर होना पड़े—इसी से आत्मबलिदान दे रहा हूं। यह दोष किसी पर नहीं माना जाये लुकछुपी का अपराध मेरे पर ही है।

अमर्ष बनने के पहले मैं कालेज का एक रंगीन छात्र था। हंसमुख स्वभाव शुरू से ही है और हंसी करने में मैं कभी चूकता नहीं था। क्या भारतीय संस्कृति का मूल आनन्द नहीं है? बहुतों ने भी तो बात बाते यही संदेश दिया है खुश रहो अहमे बदल हम तो उच्चार करते हैं। मेरा भी उद्देश्य खुश रहो और खुश रक्खो' ही रहा है। लेकिन ये हंसीमजाकी मुझे बहुत मंहगी पड़ी। कालेज के आहाते में एक दिन पड़ोस के रिश्ते की एक भाभी ने मुझे मेरी सहपाठिनी के साथ हंस हंस कर बातें करते देख लिया। लाबी में एक खंभे के सहारे खड़े थे हम दोनों निर्मल मजाक कर रहे थे मगर भाभी को क्या? उसने चलगनी का सहारा लिया और सारे गांव में एक सप्ताह के

भीतर तो मेरी चार आँखें उठने लगीं, महीना भर नहीं बीता कि छुटपुट बातें कामों में आने लगीं समय बीतते बीतते अनेक बदनाम जिन्दगियों से मेरा असम्बन्ध संबंध जोड़ने लगे।

माँ बाप का इकलौता बेटा था लाडप्यार में पला था, अनेक उम्मिदों को बाँध कर माँ बाप ने बुढ़ापे का सहारा मान कर मुझे कॉलिज में भेजा था। वे मुझे आई० ए० एस० देखना चाहते थे। जब सुना उन्होंने तो सीना धस गया। मेरे ऊपर उपदेशों के प्रहारों का बोझ लदने लगा और फल फल यह हुआ कि उस कॉलिज को कॉलिज अधिकारियों ने चरित्र का बदनाम सर्टीफिकेट देकर निकाल दिया जिससे वह जो करे जो भारी के करने योग्य नहीं है और मुझे स्थान परिवर्तन करके पिताजी ने दूसरे कालेज में पढ़ने भेज दिया।

यह दामन का दाग झूठा था किन्तु कौन समझेगा? मैंने कभी किसी को समझाने का प्रयत्न भी नहीं किया लोग चोर की दाढ़ी में तिनका समझ कर मुझे ही बेवकूफ बनाते।

थर्डइयर में शादी हुई मेरी और बी० ए० में प्रवेश लेते ही पिताजी का आश्रय टूट गया। विधवा माँ को लेकर पत्नीसहित मैं उसी शहर में रहकर पढ़ता रहा सोचा था बी० ए० करके कहीं कम्पीटिशन में बैठूंगा। घर की दशा मध्यम थी कमानेवाला था नहीं ट्यूशन करके कुछ आमदनी की सोची। एक धनिक की लड़की को पढ़ाने लगा। रोज पढ़ाता था। एक दिन वह लड़की घर आ गई। कुछ किस्मत हमारी ही ऐसी थी कुछ उसको भी आना था। पत्नी को शक हुआ घर में द्वन्द हुआ माँ का जी जला और मैं अपनी रातों की नींद हराम कर बैठा। ट्यूशन छोड़ दिया क्योंकि परीक्षा पास आ गई थी क्योंकि मेरे ही घर में मुझे समझने की कभी किसी ने सही कोशिश नहीं की। परीक्षा का नतीजा अच्छा नहीं आया तथा प्रथम आनेवाला इस साल थर्ड क्लास में पास हुआ मानसिक शांति कहाँ थी?

स्वर्ग को नरक में बदलना हो तो स्वर्ग के पीनेवाले पानी में शक के कीड़े डाल दो। मेरा घर नरक बन गया। पत्नी को समझाया

सहलाया धमकाया ,लेकिन नहीं विश्वासों के आघातों में शको की क्षति बहुतो है जिसका इलाज इस विज्ञानयुग में कहीं नहीं मिला ।

हार कर क्लर्क हो गया । माँ दो वर्ष हुए लड़के को डिप्टीकलक्टर देखने के स्वप्निल स्वप्न देखते देखते चली गईं। पत्नी है शक भी है पता नहीं फिर भी कैसे मैं एक लड़के का बाप बन गया हूँ। घर की गाड़ी भगवती बाबू के शब्दों में "चर्र चरमर चूं" करती चल रही है ।

लेकिन परसों एक तूफान और आया जिसने किश्ती हिला दी, पतवार तोड़ दिये, किनारा अनजान बना दिया ।

ऑफिस में जहाँ मैं एक मामूली क्लर्क हूँ एक लेडी टाईपिस्ट भी है। गेंहुआ रंग मध्यम कद पतली। मजाक और हंसी आदत मेरी बनी हुई ही है यही तो वह गुण है जिसको याद करके मैं अपनी जिन्दगी को अभी तक निभाता रहा हूँ वर्ना पता नहीं समाज की आंखें कब की खा गई होतीं। मैं टाईपिस्ट से भी बात करता कभी कोई हंसी भी। आखिर साथ रहने वाले बोलेंगे नहीं क्या हंसेंगे नहीं क्या ? तो फिर समाज को छोड़ दो अकेला व्यक्ति ही रहे ? क्यों सहकार की बातें करते हो क्यों समाजवाद का स्वर चिल्लाते हो ?

मैं कहता हूँ बढ़ बढ़ कर बातें करने वालों ने कभी अपनी लम्बी जिंदगी की राह को भी मुड़ कर देखा है। नहीं वे सब देखता है।

पर परसों आफिस के जनरल मैनेजर का एक 'गोपनीय' पत्र मिला। लिखा था कि आपका लेडी टाईपिस्ट से अनुचित संबंध सुनने में आया है, क्यों नहीं आप दोनों को नौकरी से नोटिस दे दिया जाय एक्सप्लेनेशन दीजिये ।

क्या एक्सप्लेनेशन दूं ? जब समाज ने शक किया तो मैंने उसे आंखें दिखाकर डरा दिया जब पत्नी ने शक किया तो धमका डरा कर दबाया लेकिन जब मालिक शक करे --तौबा ? मैंने अपनी पूर्ण निष्ठा से नौकरी की है। खुदा गवाह है पिछले दो वर्षों में कभी भी छुट्टी भी ही नागा किया हो या बेईमानी से काम किया हो। मैं सच्चा

हूँ ब्रह्मचर्य में घोर चरित्र में। इन्हीं दो आधारों पर तो मैं जीवन को कंचन बनाना चाहता था लेकिन आज मालिक ने बुलाकर अपनी असली ज़बान से मुझे कहा— यह शक नहीं है, सही बात है, तुम चाहो तो हम उस आदमी को भी पेश कर सकते हैं जिसने तुम्हें और टाइपिस्ट को एकांत में समझौता करते देखा है।'

मैं जवाब दिये बिना आफिस से बाहर आ गया। क्या एक्सप्लेनेशन दूँ? यदि दिल और दिमाग को चीर कर देख लेने वाला कोई यंत्र होती मेरी सच्चाई साबित हो सकती है। यही एक्सप्लेनेशन है कि दुनिया से नारी का अस्तित्व ही मिटा देना चाहिये और दुनिया का अस्तित्व बनाये रखने के लिये पेड़ों पर से जवान बेटे तोड़ लेने चाहिये। या फिर दुनियावालों से कहो कि एक स्त्री धर्म से एक बार सामूहिक रूप से युद्ध किया जावे और शक को निर्मूल किया जावे।

मेरे में हिम्मत नहीं है कि मैं इस तरह से जूझ सकूं। आगे आने-वाली पीढ़ी को मेरी यही वसीयत छोड़ जाता हूँ कि संभलकर पांव रखना फूंक फूंक कर कदम उठाओ और शक करने कराने से बचो— यदि दुनिया को बचाना है तो।

फिर नहीं अलविदा।

भवदीय

हस्ताक्षर'



● रामानन्द

मोह

डाक्टर उस बड़े मकान से बाहर निकले और अपनी नीली लैंड-मास्टर के निकट आकर खड़े हो गये। उनके साथ दो व्यक्ति थे, एक ने उनका बैग सम्भाल रखा था, दूसरा जो सफेद खादी का कुर्ता और टखने को छूती हुई धोती पहने हुए था डाक्टर से बात कर रहा था। डाक्टर ने जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला, उसमें से एक सिगरेट खींची और उसे जलाकर अपने बयान को शुरू किया

—देखो! मैंने देख तो लिया है लेकिन एक्सरे होना जरूरी है। पेट का यह दर्द खतरनाक है किसी वक्त भी पेशेन्ट की जान ले सकता है।

यह तो आप जानें डाक्टर साहब मैंने तो अपने पिता को आपके हाथों सौंप दिया है। रुपये की चिन्ता नहीं है जान बच जाये बस। सफेद कुर्ते वाले व्यक्ति ने निवेदन के स्वर में कहा, उसके चेहरे पर उदासी की स्याही थी उसकी आँखों में रुलाई सी हो रही थी।

डाक्टर ने सिगरेट का कश खींचा, चुटकी से राख झाड़ी और उस व्यक्ति की आँखों में उभरे हुए दुख को देखकर दिलासा देते हुए बोले 'आपको हिम्मत रखनी चाहिए। हर डाक्टर अपने रोगी को बचाने के लिए अपनी सारी ताकत लगा देता है मैं भी यही करूँगा। लेकिन सबसे बड़ा वह ईश्वर है, जिस पर विश्वास रखना चाहिए।

डाक्टर ने दूसरे व्यक्ति से बैग ले लिया और उसे पिछली सीट पर रख लिया। फिर वह बोले कल आठ बजे सुबह हॉस्पिटल में आइयेगा, मैं चिट लिख दूँगा एक्सरे हो जाएगा। उन्होंने हैंडिल को दबाकर दरवाजा खोला और स्टियरिंग के सामने बैठ गये।

कुर्तेवाले व्यक्ति ने कुर्ते की जेब में से दस दस के तीन नोट निकाले और डाक्टर साहब की फीस उन्हें पकड़ा दी। डाक्टर ने नोटों को अपने पर्स में रखा एक बार फिर याद दिलाया—'कल सुबह ले आना।' और कार 'स्टार्ट' कर दी।

खड़े हुए दोनों व्यक्तियों ने अनुगृहीत हो नमस्ते के लिए हाथ जोड़ दिये। डाक्टर ने सिर हिलाकर जवाब दिया और कार एक बार हॉर्न बजाकर चल दी। दोनों व्यक्ति मकान में आ गये।

कुर्तेवाला व्यक्ति बैठक से निकलकर उससे जुड़े हुए दूसरे कमरे में गया, जहाँ उसके रोगी पिता पलंग पर लेटे हुए दर्द से कराह रहे थे। वह बेचैनी के कारण बार-बार करवट बदल रहे थे फिर भी चैन नहीं पड़ रहा था। अपने दोनों हाथ से उन्होंने अपने पेट को दबा रखा था।

उसने पलंग के निकट पहुँचकर कहा "पेट दबाओ मत भैय्या जी डाक्टर साहब मना कर गये हैं।" वह पिता को भैय्या जी कहता था।

पिता ने हाथ हटा लिया। अपने बेटे की याचना भरी दृष्टि से देखते हुए बोले— इस दर्द से छुटकारा दिलवादे कौशल या फिर ऐसी दवा दिलवादे जो आसानी से मर जाऊं! पेट में मरोड़-सी उठी, उन्होंने निचले होंठ को दांतों से कस कर दबा लिया जैसे दर्द की असह्यता पर काबू पाने का प्रयत्न कर रहे हों।

"ऐसा मत कहो भैय्या जी।' बेटे कौशल ने दबे हुए स्वर में कहा। वह निकट की कुर्सी पर बैठ गया। हल्के-हल्के पिता का पेट सहलाता हुआ बोला—"चिन्ता की बात नहीं है भैय्या जी" डाक्टर साहब कह रहे थे आपरेशन होगा उसके बाद बीमारी जड़ से मिट जायेगी।

'दुर्गति बन जाएगी कौशल। मरना तो वैसे भी फिर क्यों पेट की चीरा-फाड़ी करवाते हो!"

दूध का गिलास लेकर कमरे में लक्ष्मी आ गई थी—उन्नीस-बीस की लड़की। रंग गेहुँआ देखने में सुन्दर पर चेहरा दुःख से मुरझाया

हुआ। उसने गिलास मेज पर रखा और पिता को देखने लगी। अवसाद में डूबी हुई थी जैसे उतरा हुआ बासी फूल।

'मम्मी, कौशल कहता है डाक्टर आपरेशन करेगा। क्या फायदा अब काट-फांस से? साठ साल का हो गया पके आम को एक-न-एक दिन तो झड़ना है ही आज नहीं तो कल।' पिता ने स्नेह से बेटी को देखा और देखते रहे कुछ क्षणों तक। उन्होंने देखा कि डरी हुई मम्मी की आँखों से आँसू बह पड़े।

'अरे यह क्या! रोती क्यों है?' पिता ने आँख मींचकर दर्द को अन्दर-ही अन्दर घोंटते हुए कहा लेकिन मम्मी कमरे के बाहर जा चुकी थी और बाहर जाकर दीवार के सहारे अपने सिर को टेककर फफक-फफक कर रो रही थी।

सारे घर की हवा में उदासी-सी घुली हुई थी जिसने हर एक सदस्य को बोझ से दबा रखा था। अमोलक चन्द की निराशा ने सब के साहस को परास्त कर दिया था। घर की चुप्पी सम्भावित आपत्ति की भयानकता के भारीपन से कठोर हो गई थी। अमोलक चन्द अपनी मृत्यु के बारे में आश्वस्त थे और इस आश्वस्तता ने झुकाव के बदले उनको सब के मोह से और भी ममता से जोड़ दिया था। वह कौशल को देखते तो बड़ी विवश दृष्टि से। मम्मी को देखते तो उसका वैधव्य उनको नुकीली कीलों-सा चुभता। वह पत्नी को देखते तो सोचते मेरे बाद इसका कौन होगा? भाई को देखते तो दिल टूट जाता—कितना छोटे से उसे पाला था। भाई होकर भी वह उनके लिए कौशल-सा बेटा था। वह सोचते थे दुनियां उनकी आज है बस यह सांस के टूटने के साथ-साथ बन्द हो जाएगी—यहां का खेल यहीं रह जाएगा। इतना सोचने पर भी उनका अपनों से मोह नहीं छूटता है। दुनियावी चिन्ताएं उन्हें मकड़ी के जाले की तरह फंसाए हुए हैं—वह छटपटाते हैं पर निकल नहीं पाते।

दूसरे दिन हॉस्पिटल में उनका एक्सरे लिया गया। डाक्टर साहब ने अच्छी तरह उस फोटो की जाँच की फिर दो दिन बाद की तारीख

दी जिस दिन वह उसका ऑपरेशन करेंगे। अमोलक चन्द को हॉस्पिटल में दाखिल कर दिया गया।

हॉस्पिटल में आकर अमोलक चन्द और भी विकल हो गये। उनसे उनका घर आसानी से नहीं छूटा। उन्होंने एक-एक करके सबको बुलाया था। नन्ही का हाथ वह अपनी आँखों पर रखकर खूब रोये। कैसे अभागे हैं वह जो दो साल भी बेटी के सुहाग का सुख नहीं देख पाए। उसकी सारी जिन्दगी मायूसी में फँस कर रह गई। ईश्वर कैसा निर्दयी हुआ कि पति छीन लिया और छोटी सी एक बच्ची का भार गोद को दे दिया। कौन निभाएगा उनके मरने के बाद?

नन्ही, मैंने तेरे लिए कुछ नहीं किया—मैं जिन्दा रहता तो तेरी शादी" " वह इतना कह कर रो दिये थे।

नन्ही अवाक रह गई थी। उसके कलेजे पर जैसे पत्थर की चोट पड़ी थी और वह पत्थर-ही-पत्थर सी ऽ करके रह गई थी। एका-एक उसका अन्त जलकर भभक उठा था। वह सिसक उठी थी—भैय्या जी क्या कहते हो? मैं-ही पातकी हूँ आप क्यों पछताते हो? जब एक-ही नहीं रहा तो दूसरे की क्यों सोचते हो? फिर नन्ही ने अपने को सम्भाला था और पिता को आशा दी थी—विश्वास रखो भैय्या जी भगवान आपको हमसे नहीं छीनेगा।

रोते-रोते भी अमोलक चन्द के होंठों पर व्यंग्य भरी मुस्कान—एक भारी-सी मुस्कान—आई थी और निकल गई थी, जैसे कह रही थी— "जीने की बात उससे करती हो जो अपनी मौत अपने सामने देख रहा हो।"

कौशल के सिर पर उन्होंने प्यार से हाथ फेरा था जैसे उस स्पर्श से जागने वाली मार्मिक सिहरनों को वह अपने अन्त में विस्तृत कर रहे हों कि मृत्यु की भाकोरता को वे दुलार की उमंगों से रूक लें।

पत्नी को देखकर वह अपने सारे अतीत को दोहरा गये थे और इच्छा हुई थी कि मिनट वाली मृत्यु की भरपन को खरीद दें वह

मृत्यु उनके सामने छटपटा-छटपटा कर दम तोड़ दे और वह अपनी पत्नी का हाथ पकड़ कर उसे दूर ले जायें बहुत दूर जहाँ उनका अतीत अमरता लिये हुए बसा हो जहाँ उनकी युवावस्था के सुखद क्षण ज्यों-के-त्यों ताजे संजोए रखे हों। वह पत्नी को देखते रहे थे और संस्कारगत मोह उभर कर पत्नी को छाती से लगाने को लालची हो उठा था। वह बोले थे—

राधा मैं चाहता था कि तुम पहले मर जाओ ताकि शादी के वक्त दिया वचन आखीर में भी निभा सकूँ" पर शायद पहले ही

राधा ने उनके मुँह पर हाथ रख दिया था। वह फूट पड़ी थी नहीं जीते जी ऐसा अशुभ मत निकालो। मेरा भगवान मेरे साथ है। वह इतना निर्दयी नहीं है। वह करुणा सिंधु है वह दया सागर है पहले वह मुझे ही उठायेगा जरूर मेरी सुनेगा।

अमोलक चन्द ने आँखें मूंद ली थीं और जब आँखें खोली थीं तो राधा जा चुकी थी।

उन्हें जब भाई और कौशल सम्भाल कर तांगे तक लाये थे और तांगे पर बैठाया था तब उन्होंने भाई से कहा था 'विष्णु कैसा भाग्य है कि अर्थी के बजाये जिन्दा निकल रहा हूँ पर से—शान्ति से घर में मर पाता तो कितना अच्छा होता? अब तुम पर ही भार है।

और जब तांगा चलने को हुआ था तो उनका हृदय लौट पड़ा था। उनका वह मकान उनसे पीछे छूट रहा था जिसकी एक-एक ईंट में उनकी जिन्दगी की कहानी बंधी थी—जो इस समय चुप थी मौन थी विवश थी, जैसे वह थे विवश मौन और चुप।

दो दिन में अमोलक चन्द का दम घुट-सा गया। हॉस्पिटल के पलंग पर पड़े-पड़े वह घबरा गये। उनका चेहरा और भी पीला पड़ गया। कितनी भीत-प्रसूता जगह है? कितने नजदीक हो जाते हैं जीवन और मृत्यु के दो सिरे? उन्हीं के कमरे में वह भी हैं जो मौत को छूकर जीवन में लौट आए। एक मृतक बिन्दु पर पड़ाव लेकर जैसे उनकी जिन्दगी फिर जीवन पथ पर चल दी। और" और उनके देखते

देखते तीन-चार का जीवनान्त भी हो गया। सांस के छूटते ही मिट्टी पड़ी रह गई और वह जो सक्रिय, जो सद्गुण, जो ऊर्जा सम्पन्न शक्तिमत्ता थी जो अपने घर की बाहर की दुनियां को अपने में बांधे थी उनकी वह अजानी जिन्दगी धीरे से खिसक गई सब देखते रह गये। उनकी मृत निरर्थक देह के लिए पहले तो लोग रोये और फिर ले गये। उन्होंने सोचा, उन्हें भी इसी तरह ले जाएंगे। वह उस समय देख नहीं सकेंगे। अनुभव भी नहीं कर सकेंगे। पर जानते हैं कि राधा भी रोएगी नन्दी भी रोएगी कौशल भी रोएगा विष्णु भी रोएगा और उनकी अन्तिम यात्रा हस्पताल से शुरू होगी मरघट तक जाकर खत्म हो जाएगी—शेष रहेगी तो मुट्ठी भर राख! और कुछ हड्डियां।

सुबह भी बड़े ऑपरेशन होगा। सारी रात अनेकानेक चक्र चलाते रहे। कितनी ही अनाम-अज्ञ मार्ग उन तक जाती रहीं और वह किसी दूरागत यात्रा को जाने वाले किसी आप-से उन्हें पुकारते रहे और लौटाते रहे। वह रात भर अपने मन को निर्द्वन्द्व और प्रशांत करते रहे। वह अपने को समझाते रहे— क्यों नहीं मोह के बांधन को निर्वासित करता है? शेष है क्या जिसकी आकांक्षा शेष है? क्या नहीं है जो भोग चुका है? क्या है जो और भोगेगा?' एक सीए-सी जिजीविषा की कंपकपाती इच्छा जो उनमें बार-बार उठती थी उसे वह बहकाना चाहते थे, यह कहकर 'तू जा! तू जा!

सुबह उनके सामने परिवर्तित रूप में आई। उसमें न आशा थी न निराशा। हॉस्पिटल का रोगियों वाला कमरा उनको कैसा भी नहीं लगा। कमरे में बैठे रोगी उन्हें न अपने-से लगे, न दूसरों-से। जैसे वह अपरिचित थे उन सबसे और वहां के वातावरण से। आठ बजे उन्हें नर्स द्वारा दवा दी गई। उन्होंने पी ली।

विष्णु कौशल नन्दी राधा उनसे मिलने आए और उन्होंने तटस्थ दृष्टि से उन्हें देखा। वह उनका विष्णु था वह उनका कौशल था वह उनकी नन्दी थी वह उनकी पत्नी राधा थी लेकिन वह ऐसे

देख रहे थे ऐसे बात कर रहे थे जैसे वह पत्थर हो गए हों। अपनों को देखकर उनका हृदय तरल नहीं हुआ। उनकी आंखों में आंसू नहीं आए। उनका मोह बादलों सा उमड़ा नहीं। उमड़ कर बरसा नहीं। अमोलक चन्द जैसे अलग हो गये थे, पृथक हो गये थे कट गये थे। मन्नी खड़ी रो रही थी। राधा की आंखें डबडबाई हुई थी। कौशल आंसुओं को रोके हुए था। विष्णु अपने धीरज को दृढ़ कर रहा था।

सिस्टर ने अपने स्थान से आज्ञा दी— आप सब जाइये डाक्टर साहब के आने का समय हो गया।

सबकी आंखें छलछलाईं! अमोलक चन्द का वह निर्मोह टूटा किर्च किर्च हो बिखर गया। उन्होंने हाथ जोड़े और फफक कर रो पड़े!

सिस्टर नाराज होकर चिल्लाई— क्या है? आप लोग जाते क्यों नहीं रोगी को क्यों कमजोर बनाते हैं।

सब बाहर चले आए। दूसरे रोगियों के रिश्तेदार भी बाहर आ गये।

अमोलक चन्द को एक डाक्टर ने इन्जेक्शन दिया फिर उन्हें पहिये वाली मेज पर लिटा दिया गया। अमोलक चन्द ने आंख बन्द करके ईश्वर का ध्यान किया—ध्यान करते रहे।

सब बाहर थे और अन्दर आपरेशन थियेटर में अमोलक चन्द को बेहोश करके उनका आपरेशन किया जा रहा था।

कौशल बेचैन था धीमे कदमों से घूम रहा था।

विष्णु बैंच पर बैठा था, उसके सिर में दर्द हो रहा था।

मन्नी की गोदी में उसकी बच्ची थी जो अपने छोटे हाथ चला चला कर खेल रही थी। मन्नी के आंसू टप-टप गिर रहे थे।

राधा मन्नी को चुप करा रही थी, पर उसकी आंखें आंसू रोक नहीं पा रही थीं।

आधा घंटा!

देखते तीन-चार का जीवनान्त भी हो गया। सांस के छूटते-ही मिट्टी पड़ी रह गई और वह जो प्राणी जो मनुष्य जो ऊर्जा सम्पन्न व्यक्तित्व था जो अपने घर की बाहर की दुनियां को अपने से बांधे थी उनकी वह प्रभावी जिन्दगी धीरे से खिसक गई सब देखते रह गये। उनकी मृत निरर्थक देह के लिए पहले तो लोग रोये और फिर ले गये। उन्होंने सोचा 'उन्हें भी इसी तरह ले जाएंगे।' वह उस समय देख नहीं सकेंगे। अनुभव भी नहीं कर सकेंगे। पर जानते हैं कि राधा भी रोएगी मम्मी भी रोएगी कौशल भी रोएगा विष्णु भी रोएगा और उनकी अन्तिम यात्रा हस्पताल से शुरू होगी मरघट तक जाकर खत्म हो जाएगी—शेष रहेगी तो मुट्ठी भर राख! और कुछ हड्डियां।

सुबह नौ बजे ऑपरेशन होगा। सारी रात अमोलक चन्द जागते रहे। कितनी ही जख्म-भरी यादें उन तक आती रहीं और वह किसी दूरागत् यात्रा को जाने वाले किसी बाप-से उन्हें पुचकारते रहे और लौटाते रहे। वह रात भर अपने मन को निरउद्विग्न और प्रशांत करते रहे। वह अपने को समझाते रहे—'क्यों नहीं मोह के बंधन को निर्वासित करता है? शेष है क्या जिसकी आकांक्षा शेष है? क्या नहीं है जो भोग चुका है? क्या है जो और भोगेगा?' एक लौ-सी जिजीविषा की कंपकपाती इच्छा जो उनमें बार-बार उठती थी उसे वह बहकाना चाहते थे यह कहकर 'तू जा! तू जा!'

सुबह उनके सामने परिचालित रूप में आई। उसमें न आशा थी न निराशा। हास्पिटल का रोगियों वाला कमरा उनको कैसा-भी नहीं लगा। कमरे में लेटे रोगी उन्हें न अपने-से लगे, न दूसरों-से। जैसे वह अपरिचित थे उन सबसे और वहां के वातावरण से। आठ बजे उन्हें नर्स द्वारा दवा दी गई। उन्होंने पी ली।

विष्णु, कौशल मम्मी राधा उनसे मिलने आए और उन्होंने तटस्थ दृष्टि से उन्हें देखा। वह उनका विष्णु था वह उनका कौशल था वह उनकी मम्मी थी वह उनकी पत्नी राधा थी लेकिन वह ऐसे

देख रहे थे ऐसे बात कर रहे थे जैसे वह इतर हो गए हों। अपनों को देखकर उनका हृदय तरल नहीं हुआ। उनकी आंखों में आंसू नहीं आए। उनका मोह बादलों सा उमड़ा नहीं। उमड़ कर बरसा नहीं अमोलक चन्द जैसे अलग हो गये थे अचक ही गये थे कट गये थे। नन्ही खड़ी रो रही थी। राधा की आंखें डबडबाई हुई थी। कौशल आंसुओं को रोके हुए था। विष्णु अपने धीरज को दृढ़ कर रहा था।

सिस्टर ने अपने स्थान से आज्ञा दी—'आप सब जाइये डाक्टर साहब के आने का समय हो गया।

सबकी आंखें छलछलाईं! अमोलक चन्द का वह निमोह टूटा छिन्न भिन्न हो बिखर गया। उन्होंने हाथ जोड़े और फफक कर रो पड़े!

सिस्टर नाराज होकर चिल्लाई— क्या है? आप लोग जाते क्यों नहीं रोगी को क्यों कमजोर बनाते हैं।

सब बाहर चले आए। दूसरे रोगियों के रिश्तेदार भी बाहर आ गये।

अमोलक चन्द को एक डाक्टर ने इंजेक्शन दिया फिर उन्हें पहिये वाली मेज पर लिटा दिया गया। अमोलक चन्द ने आंख बन्द करके ईश्वर का ध्यान किया—ध्यान करते रहे।

सब बाहर थे और अन्दर आपरेशन थियेटर में अमोलक चन्द को बेहोश करके उनका आपरेशन किया जा रहा था।

कौशल बेचैन था धीमे कदमों से घूम रहा था।

विष्णु बेंच पर बैठा था उसके सिर में दर्द हो रहा था।

नन्ही की गोदी में उसकी बच्ची थी जो अपने छोटे हाथ चला-चला कर खेल रही थी। नन्ही के आंसू टप-टप गिर रहे थे।

राधा नन्ही को चुप करा रही थी पर उसकी आंखें आंसू रोक नहीं पा रही थीं।

जाना कंटा!

कौशल के कण्ठ में एक स्पष्ट आवाज हुई—भैय्या जी ठीक नहं हैं। शंकित हुआ कि कहीं भैय्या जी का आखिरी क्षण ।

वह हिल गया। झुकते हुए उसने पूछा भैय्या जी कैसी तबियत है?

अमोलक चन्द ने अपने पर झुके कौशल का चेहरा देखा—होंठों से इतना कहा-बच्चे आने की बात मुँह में रह गई।

कौशल सीधा हुआ कुछ ठहरा फिर सिस्टर के पास गया कि डाक्टर को बुला लाए।

अमोलक चन्द के चेहरे पर जीवन-मृत्यु की धूप-छांह प्रकट होने ओझल होने लगी। उनका कष्ट उनकी आँखों में उभर आता था।

उन्होंने राधा को देखा जैसे वह उसे अपनी आँखों में रखे जा रहे हों—होंठ फिर हिले और एक फीकी परन्तु आत्मीयता सिक्त मुस्कान उनके होंठों पर आई और लोप हो गई।

राधा के लिए अपनी व्यथा असह्य हो गई। उसे लगा कि उनकी दृष्टि उसे कितनी ही युगों से खोज रही है। उसकी आँखें आंसू से भर आईं।

अमोलक चन्द ने अपनी दृष्टि हटा ली—जैसे वह कुछ भी दुखी देखना न चाह रहे हों। वह नन्ही को देखने लगे। नन्ही अनमनी कुछ सिमटी-सी खड़ी थी। उन्होंने नन्ही को देखा और उसकी गोद की बच्ची को देखा। एका-एक एक गहरी पीड़ा एक अपरिचित अन्तर वेदना उनकी आँखों में भर गई। वह नन्ही को देखते रहे, उनकी आँखों में आंसू के मोती जम गये। नन्ही देख नहीं सकी उसकी आँखों से आंसू रिस पड़े। उसने गरदन घुमाली। अमोलक चन्द के चेहरे पर बेचैनी उभरी छटपटाहट उभरी होंठ कांपे कि जैसे कहना चाह रहे हो—नन्ही मुंह मत फेर! मुंह मत फेर! मैं तुझे देखता रहना चाहता हूँ। वह अवाकता की छटपटाहट उनकी दृष्टि में पत्थर सी कड़ी बर्फ-सी कठोर होकर जम गई। होंठ हिले कि नन्ही को वह देख

में—उसके चेहरे को देख में तभी ममोतक भय की पुतलियां चढ़ गई, उनकी मुट्ठी की पकड़ शिथिल हो गई। संघर्ष समाप्त हो गया। उनकी निश्चेत गरदन एक तरफ झुक गई।

कौशल! राधा चीख पड़ी उसका सिर घूमा और वह धड़ाम से गिर पड़ी। उसका हाथ लोहे के पलंग से टकराया और निर्वाक चूड़ियां टुकड़े-टुकड़े हो गईं।

जब तक कौशल डाक्टर को लेकर आया तब तक सब कुछ खत्म हो चुका था चुक गया था कौशल पत्थर-सा खड़ा देखता रह गया।

● यादवेन्द्र शर्मा "[illegible]"

मिस मोनिका और पेड़ का तना

उसने मेज पर चलती हुई मक्खी को लपक कर पकड़ा। उसको चुटकी में उठाया और उसे कुचलते हुए वह बोली "विवाह एक दीमक है जो स्त्री को लकड़ी की तरह खोखली कर देता है। जब स्त्री भरपूर जवानी में होती है तब उसका ढांचा एक मजबूत लकड़ी की तरह होता है। बाद में उसको पति परमेश्वर की दी हुई कई तरह की दीमकें चट कर उसे खोखली बना देती हैं। और सबसे खतरनाक दीमकें हैं—ये बच्चे। जब ये होते हैं तब ये उस बेचारी का बड़ा बुरा हाल होता है। ये बच्चे बिच्छुओं के बच्चों की तरह स्वार्थी होते हैं जो अपनी मां को चट कर जाते हैं और उसको कंकालवत छोड़कर कहीं और चले जाते हैं। मैंने विवाह नहीं किया विमला। इसलिए मैं अकेली ही रहती हूं। खूब पैसा कमाती हूं और मजे में रहती हूं।" कहकर मोनिका चुप हो गयी। उसके चेहरे पर कैक्टस के पौधे जैसा खुरदरापन व कंटीलापन उभर आया जिससे वह बड़ी डरावनी लगने लगी। विमला भयभीत हो गयी। उसके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला।

तुम लोग तितलियों की तरह हो। इनके प्यार के फूल को पीने के लिए पूंछनुमा साड़ी हिलाती हुई पहुंच जाती हो। इनकी वासनाओं के बड़े इनके शरीर रूपी मकान में बड़ी हलचल मचाते हुए होते हैं और तुम्हारे द्वारा उन्हें मसला कर ये तुम लोगों की सदा के लिए छुट्टी कर देते हैं। ये बड़े स्वार्थी होते हैं। मैं कहती हूं कि तुम्हारे पास पैसा होना चाहिए, ये सभी मधुमक्खियों की तरह तुम पर टूट पड़ेंगे। अजीब-अजीब भाषा में भिनभिनायेंगे कि उसके अर्थ को समझने के लिए तुम्हें बकर शब्दकोष देखना पड़ेगा। लेकिन उस भाषा के मायने में केवल उनका निजी स्वार्थ होता है। बहुत ही गंदा। इसलिए मेरी

बात मानो और उस मजनूँ की औलाद को लम्बे हाथ जोड़ दो। यह प्यार यह भावुकता और यह लम्बे जीवन के सपना 'हमारे' के फूल की तरह होता है जो देखने में सुन्दर होता है लेकिन उसमें किसी भी तरह की खुशबू नहीं होती। वह यह कहते हुए उसी तरह खड़ी हो गयी जिस तरह कालेज में छात्राओं के सम्मुख खड़ी होती थी। उसकी दृष्टि में वही आवेश व बड़प्पन था।

विमला अबोध बच्ची सी उसे एक टक देखती रही। कुछ देर मौन छाया रहा। वह क्षण भर का मौन उसे श्मसान के सन्नाटे सा लगा। विमला ने धीरे से प्रश्न किया, 'तुम्हारे पास बहुत पैसा है। निरा एकान्त जीवन है। लेकिन मुझे एक बात का जवाब दो कि आखिर तुम्हारा अंत क्या होगा? क्या तुम मरते समय लुटेरे 'मुहम्मद गजनवी' की तरह रोओगी कि मेरी इतनी दौलत का अब क्या होगा? —या तुम इन सभी साजो-सामान को अपने साथ लेकर मरोगी।

मोनिका अट्टहास कर उठी। उसके चेहरे पर जल्लादों जैसी लापरवाही छा गयी। वह पलट कर बोली "मैं एक दिन अपने सामने इन सभी को जला डालूँगी। जब यह राख हो जायेगा तब मैं अपने प्राण त्यागूँगी। क्योंकि धन रहेगा तो मेरे हजार उत्तराधिकारी पैदा हो जायेंगे और मुझे उत्तराधिकारी के नाम से चिढ़ है।

'यह सब स्वाभाविक नहीं है। प्रकृति विरुद्ध है। सामान्यता की जगह तुम में असामान्यता आ रही है। मुझे विश्वास है कि तुम्हारी मानसिक स्थिति रोम के बादशाह नीरो की तरह होगी। तुम अपने घर को अपने हाथों से जलाओगी और उसने गाया था, तुम रोओगी। विमला का स्वर नीम की तरह कड़ुवा हो गया।

'मुझे उसी में आनन्द आयगा। वह धम से कुर्सी पर बैठ गयी जैसे किसी ने उसे जबरदस्ती बिठा दिया हो। वह विमला पर दृष्टि फैलाती हुई बोली, मुझे सहृदता में न विश्वास है न आनन्द।

फिर मरो। मैं तुम्हारी कोई बात नहीं मान सकती। मैं विमलेश से शादी करूंगी और जरूर करूंगी।"

फिर, मैं तुम्हें एक पैसा भी उधार नहीं दूंगी। मेरा पैसा तुम्हें पोसने के लिये है न कि तुम्हें मिटाने के लिए। सचमुच तुम जैसी मूर्ख युवती को कैद में बन्द कर दिया जाय। दुख इस बात का है कि मैं इस देश की शासिका नहीं हूं।'

विमला उठ खड़ी हुई। उसने मालिका के कमरे को देखा। उसके दरवाजे पर लटके चमकदार टैपेस्ट्री के पर्दों पर नजर जमा कर व्यंग से कहा 'तुम्हारा दिल इस बन्द सलाखों वाली खिड़की की तरह है जिसमें न कोई आ सकता है और न कोई जा सकता है। यह बन्द है और बन्द ही रहेगी। और तू अपनी ही घुटन में मर जायेगी। नमस्ते।

'ठहरो मेरी बात मानलो। इन पुरुषों को तुम क्यों नहीं समझ पा रही हो। मैं कहती हूं कि तुमने एम० ए० व्यर्थ ही किया है। मुहम्मद तुगलक की तरह सपने मत देखो।' वह चौंक कर बोली 'अरे हां तुम मैरेलिन मैनरो को जानती हो न? अमेरिका की बेहद रौब अभिनेत्री। जिसके नग्न सौन्दर्य को देखने के लिए वहां के लोग दिवाने थे। उस ऐश्वर्य सम्पन्न व लोक प्रिय अभिनेत्री ने अंत में आत्म हत्या की थी। क्योंकि इन मर्द-रूपी बेटों ने उसे सिर्फ मांस का लोथड़ा मात्र समझा था और तीन बेटों (उसके पतियों) ने उस लोथड़े को इस पूरी तरह से काटा था कि उसके भीतर दबे-घुटे प्राण छट-पटा उठे उसके अन्तिम दिनों की व्याकुलता का अन्दाज मैं लगा सकती हूं। तुमने कटी हुई छिपकली की पूंछ देखी है। वह अलग होकर भी तड़पती है। ठीक उसी तरह उसके प्राण थे। वह भौतिक रूप से इस जीवन जगत से दूर होकर तड़पते रहे। सिसकते रहे धीरे-धीरे बर्फ की तरह ठंडे पड़ गये --- ।मेरा कहा मानों अपने दिल से इस विचार को निकाल दो।

मैं तुम्हारी तरह पागल नहीं हूं। मुझे विश्वास है कि तुम्हारा अंत बहुत भयानक होगा। तुम्हें यह जीवन असह्य हो जायेगा और एक दिन तुम आत्म हत्या करोगी।' वह हवा की तरह बाहर निकल

गयी। मोनिका ने शीशे में अपना चेहरा देखा। क्या मैं आत्महत्या करूँगी? उसने अपने आप से प्रश्न किया।

"बिलकुल पागल हूँ। मैं आत्महत्या क्यों करूँगी?" उसने अपने सवाल का खुद उत्तर दिया।

कमरे में एक बारगी घोर सन्नाटा छा गया। उसके सामने की शृंगार मेज पर (काली मैय्या शिवजी की छाती पर पाँव रखे खड़ी है।) छोटा सा आशीर्वाद का स्टेचू पड़ा था। उसकी उस पर दृष्टि गयी। एक अजीब संतोष झलका उसकी आँखों में। वह उठी। उसने उसे उठा कर हर्ष से देखा। वह बाहर बरामदे में आयी। एक कलात्मक पेड़ का इन्सानगुमा तना पड़ा था। जब कभी मोनिका अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित होती है इस तने के पास आकर खड़ी हो जाती है।

वह अभी वहां आकर बैठ गयी। अत्यन्त खिन्न और टूटी सी। वह उस तने के अत्यन्त निकट खिसक गयी। अपना माथा उस पर टिका दिया। स्पर्श मादक और पुरुष का स्पर्श।

यह अकेला उसे प्यार करता है। यह निर्जीव और गूंगा तना। उसकी आत्मा की गहराइयों में कोई बोल उठा और उसने भावावेश में नैन मूंद लिये। आड़ा-जगठ उसकी पलकों में बन्द होकर लोप हो गया। उसके सामने लम्बी-लम्बी अंधेरे की घाटियां फैल गयीं। वे घाटियां सन्नाटों से गूंज रही थीं। इन घाटियों में कोई वृक्ष नहीं था कोई फूल नहीं था। सूनी और वीरान। उजड़ी और बियाबान। वह घाटियों को अपनी अन्तर्दृष्टि से देखती रही। इन्हीं घाटियों की तरह उसका दिल है। वीरान और सुनसान। जुगनुओं की चमक की तरह सुख के क्षण उसके जीवन में आये। माँ बचपन में मर गई। बाप को सदा यह वहम रहा मेरे कोई लड़का नहीं है इस लिए मेरा बुढ़ापा बिगड़ जायेगा और मैं अपने अन्तिम दिनों में दाने दाने का मुहताज हो जाऊंगा   इसलिए उसने कभी भी मुसकान बाने वाली बेटी को आत्मा से प्यार नहीं किया। एक पालन पोषण का फर्ज थाये थे उसे दो जून खाना साधारण कपड़े और

पढ़ाई का खर्च उठते थे। वह पाउडर लगाती टीका-टमका करती बालों में जूड़ा बांधती तो वे सख्त नाराज होते और उस तरह के रवैये को वे फालतू खर्च की सजा देते थे। मोनिका तर्क जरूर करती। तर्क पर वे जल भुन जाते और भाषण कर्ता की तरह कहते — एक गरीब क्लर्क जीवन की इससे अधिक क्या आवश्यकताएं पूरी कर सकता है? आज की लड़कियां प्रकृतिजन्य सौन्दर्य को नहीं संवारती बल्कि बनावट ही बनावट में पैसों को खाया करती हैं। मोनिका चुप हो जाती। झल्लाहट के मारे वह धुआं धुआं हो जाती। उसके पिता जी वहां से खिसक जाते। वह क्रोध में तड़पती रह जाती। उम्र जवान हो गई। बाप का रवैया और बूढ़ा हो गया। उनके व्यवहार में रूखापन और गुस्सा आया। वह भी ए॰ में पहुंच गई। आहिस्ते-आहिस्ते उसने पिताजी से कुछ कहना ही छोड़ दिया। जो वे वस्त्र ला देते उसे वह पहन लेती और जो वे थाली में परोस देते उसे वह खा लेती।

उसकी नौकरानी देवी धीरे-धीरे उसकी तरफ आई। पर्दे हिले और उसके कदमों की आहट ने कमरे की शून्यता को भंग किया। मोनिका को देखकर वह ठिठक गई। कुछ पल स्तब्ध सी खड़ी रही। फिर उसने अपने बांये हाथ से पर्दे को पकड़ लिया। उसने सोचा 'यह मालकिन की सदा की आदत है।—यह पेड़ का तना और मेरी मालकिन।—तना भी क्या कमाल है। एक दम आदमी की शक्ल का। उसने नाक भी सिकोड़ा। 'बेचारी के मर्द नहीं है, अकेली है। इस पेड़ को ही—। वह ही-ही-ही करके मौन हंसी हंस पड़ी। भाग खड़ी हुई वापस।— 'हां मालकिन ने सख्त हिदायत दे रखी है 'जब मैं इस तने के पास बैठी रहूँ तब तुम मुझे किसी कीमत पर नहीं छेड़ोगी। उस समय मैं बहुत ही गंभीर बात सोचती हूँ। सोचती हूँ, सोचती रहूँ।   देवी ने मुंह बिचका दिया।

अब मोनिका अपना अभिभूतसी मुद्रा परिवर्तन करके बैठ गई। उसका आंचल भी खिसक गया था और उसके दोनों हाथ पीछे की ओर तने को अपने घेरे में ले चुके थे।

उसे एक नई अनुभूति हुई कि वह बेटा सरवर के हाथों का है। अनुभूति मुग्धता के आवर्त में घिरती गई। उसे सरवर याद आने लगा। उसके साथ बिताये हुए हजारों क्षण। समर्पण और प्रीत के क्षण! फिर अलगाव। फिर मंजूस से प्रेम। अभाव और प्रेम का समझौता नहीं। इस दरिद्रता ने उसे विवाह का कोई नया संदर्भ नहीं छूने दिया। वह युगों से चले आ रहे वातावरण में झूलती रही। लेकिन उसने एक नये सत्य को जाना कि नारी हर क्षण अनास्था पाकर नये सिरे नई आस्था ग्रहण कर लेती है। जैसे वह अपूर्ण नारी है मर्द के बिना पर यह क्षमता मर्द का अपना नहीं युग परिस्थिति से विवश पुरुष के अपच ने उसे फिर ठगा। तब घृणा से वह भर उठी। मंजूस से सैद्धान्तिक मत-मतान्तर होने के बाद वह अपने में अन्तर्निहित हो गई। सिमट गई। और फिर उसके बाप ने कभी भी उसके विवाह की चिन्ता नहीं की। वह एक भी रुपया खर्च करना नहीं चाहता था।

परन्तु उसे ये सब स्मृतियाँ सता जाती हैं। वह अवश हो जाती है।

तना हिलने लग गया था। उसकी खटखटाहट ने उसका ध्यान भंग किया। अतीत की घटनाएं कागज के व्यर्थ टुकड़ों में बिखर कर उड़ गईं। वह उठी। उसे चारों ओर से आग सी जलती हुई प्रतीत हुई। बदन जलने सा लगा।

आग! आग! आग!

वह स्नान घर में जाकर पानी से भरे हौज में कूद गई। वह बड़ी देर तक स्नान करती रही। बाहर आई। बाहर आकर उसने अपने बाल सुखाये। केली से चाय बनवा कर पी। कमरे में आई। अपने बाप की जवानी की तस्वीर को देखा। बुढ़ापे की सारी तस्वीर एक दिन उसने अनजाने में (केवल अभिनय मात्र) जला दी थी। उसे अपने बूढ़े बाप से सख्त नफरत थी। वह लोभी और कंजूस बाप जिसने रुपयों के लालच में उसे आजन्म कुंआरी रखा। उसके यौवन को जहर

बना डाला। उसके मन में सदा की तरह ख्याल आया कि वह इस तस्वीर को भी तोड़-फोड़ कर जला डाले ताकि उस कंजूस की कोई शेष-स्मृति भी न रहे। लेकिन अपने इस हिंसक व घृणित विचार को मिटाने के लिए वह तुरन्त कमरे के बाहर हो गई। उसी अर्ध-नग्न अवस्था में वह तने के पास आई। वह सिर्फ ड्रेसिंग-गाउन पहने हुए थी। उसका शरीर भीगा-भीगा था उसने उसे भी उतार दिया। उतारने के पहले वह सदा चित्रों को देखती थी। चित्र सदा की तरह दीवारों से चिपटे हुए सोते थे। वह तने के पास आकर फिर खड़ी हो गई। उस पर धीरे धीरे हाथ फेरने लगी। सोचने लगी "मुझे पुरुष जाति से सख्त नफरत है। उससे तो कदम दूर रहना चाहिए। पुरुष का चरित्र "पिकासो' की चित्रकला है और दिल 'वानगाग' की गहरे अनेक अर्थों वाली चित्रकला। अबूझ और अबोध। किन्तु प्रभाव वाली अत्यन्त प्रभावशाली। बेचारी स्त्रियाँ मोह जाती हैं। सम्मोहित भी प्यार करने लगती है। पर मुझे उनसे घृणा है बेहद घृणा और उसने अपने विचारों के विरुद्ध उस तने को अपनी बाहों में भर लिया।

देवी ने आकर उसके ध्यान को भंग किया, 'ज्योत्स्ना बीबी आई है।

'मैं आती हूँ। वह जल्दी से कपड़े पहन कर बैठक में आई। ज्योत्स्ना ने नमस्ते की।

'कहो कैसे आना हुआ ?

"यूं ही।

'ज्योत्स्ना ! तुम विधवा हो न ?' उसने हठात् प्रश्न किया।

'हाँ।'

पुरुष की बनने के बाद तुम्हें आजीवन वैधव्य मिला ? विमला भी आज पुरुष की होने जा रही है। उसे भी परम दुःख मिलेगा।" ज्योत्स्ना विमला की सहेली है।

वह भड़क उठी 'आप बहुत चिढ़ती जा रही हैं। (स्वगतभिप्राय उसने अपने मन में कहा) वह आपकी भतीजी सहेली है। आपको उसके

सुहाग की कामना करनी चाहिए। ऐसी बद्दुआ कोई दुश्मन भी नहीं देता। मैं विधवा जरूर हूँ पर माँ भी जरूर हूँ। उस पुरुष का बेटा मुझे इज्जत और सम्मान के साथ दो जून रोटी देता है। प्यार और स्नेह देता है। वह जब माँ कहता है तो मैं अपनी सारी थकान भूल जाती हूँ। मोनिका दीदी आपको जिन्दगी में जो नहीं मिला उसके लिए सबको वंचित करने की चेष्टा न कीजिए। आपका यह धन किसी को आकर्षित नहीं करेगा। सही बात यह है कि आपको अभी भी किसी से विवाह   ।

'ज्योत्स्ना तुम जा सकती हो। उसने क्रोध में नथुने फुरका कर कहा। ज्योत्स्ना चली गई। उसके जाते ही उसने गुस्से में चाय की प्याली व तश्तरी को बाहर फेंक दिया।

क्या देखती हो? मोनिका झल्लायी—देवी को देखकर।

कुछ नहीं मालकिन कुछ नहीं।' वह बेचारी कांप रही थी।

'देवी! ज्योत्स्ना कमबख्त कहती है कि मैं विवाह कर लूं। क्या तू नहीं जानती कि ये पुरुष स्वार्थी होते हैं। इनका प्यार केवल धोखा और छल होता है।

आप ठीक कहती हैं।' देवी जानती थी कि जब कभी भी उसकी मालकिन पुरुषों को गालियां देती है और अपनी सहेलियों से लड़कर उन्हें कोसती है तब उसे अपनी मालकिन को ऐसा उत्तर देना चाहिए। वह रटे-रटाये शब्दों को पिंजरे के तोते की तरह बोली 'ये पुरुष सांप हैं। इनको चाहने वाली स्त्रियां कुतियाएं हैं। वे पिल्ले पैदा करेंगी एक साथ तीन-तीन चार-चार। फिर मर जायेंगी। ये सब ऐसी ही हैं मालकिन। इन्हें मरने दो रिरियाने दो। जब बदन में खून नहीं होगा और ये पुरुष रूपी जोंकें इन्हें छोड़कर किन्हीं दूसरी स्त्रियों से चिपटेंगे तब इनकी आंखें खुलेंगी। ये आपकी बातें अभी नहीं सुनेंगी। जहन्नुम जाने दीजिये इन सबको। चलिए खाना खा लीजिये (या चाय पी लीजिए)।

मोनिका दम्भी नारी की तरह कदम उठाती हुई डाइनिंग रूम में आती है। कुछ देर तक चुप रहती है।

पान भी वह चुप थी। डेजी ने आग्रह किया 'आप खाना शुरू कीजिए, ठंडा हो रहा है।

उसने खाना शुरू किया।

डेजी ने सहमते हुए पूछा 'आपने भी जीवन में कभी किसी पुरुष को छुआ होगा ?

मोनिका ऐसी हंसी जैसे वह डेजी पर तरस खा रही हो। बोली मैंने सपने में भी किसी पुरुष स्पर्श का ख्याल नहीं किया। मैं इन्हें कंटीले तार समझती हूं इनके पास से गुजरो तो ये अपनी मदमरी आंख से हमारे आंचल को अपनी ओर खींच कर अपने कांटों में फंसा लेंगे 'और तुमने ?

छि छि आप भी कैसी बातें करती हैं। मैं आपके कदमों पर चलती हूं। ये पुरुष जिन्होंने बे-सग्राम के घोड़े हैं कौन इनकी बातें जाने। और उधर डेजी के मस्तिष्क पर उसका प्रेमी बन छा गया और इधर मोनिका को इरवर व मंजुल याद आ गया।

झूठ ! एक विस्फोट की तरह झूठ ने उन दोनों के दिमाग में धमाका किया और वे विमूढ़ हो गयी दोनों की नज़रें टकरायीं। दोनों एक साथ हंस पड़ीं।

"डेजी ने कहा 'किसका वक्त शादी करेगी।

'मरने दो। उसने चिढ़कर कहा और वह उदास सी होकर बैठी कभी शादियां कर लेंगी और करती जायेंगी। मैं विरोध करूंगी और करती जाऊंगी। एक दिन ऐसा आयेगा कि मैं मर जाऊंगी। मेरे कोई नहीं होगा। अकेली रेगिस्तान की झाड़ी की तरह अकेली। नहीं-नहीं मैं मर जाऊंगी मर जाऊंगी अपने सारे दुख को मिटाकर पहले ही मिट जाऊंगी। सब कुछ खाक कर दूंगी। पर टूटूंगी नहीं। अपने को अब मैं कैसे बदल सकती हूं। बरजन ! वह कराह उठी।

और फिर वह उठकर अपने बाप की जवान तस्वीर के पास गई। मैं इसे फोड़ डालूँगी। इसकी स्मृति मिटा डालूँगी। और वहां से वह सीधी उसी इन्सानमुमा तने के पास आयी और उसे जोर से हिलाने लगी।

डैडी ने मुंह बिचकाकर मन-ही-मन कहा यह इसका सदा का काम है। कभी न कभी ये जरूर पागल होगी।

और वह सदा की तरह अपने काम में व्यस्त हो गई।

मोनिका की आँखों में आंसू आ गये। वह टूटकर थककर तने के सहारे बैठ गई—सदा की तरह—बिलकुल पस्त होकर।

●गोपीवल्लभ गोस्वामी 'उपेक्षित'

काया सस्ती जिन्दगी महंगी

चिलचिलाती धूप, सांय सांय करती गर्म लू और दूर दूर तक फैले बीरान रेगिस्तान के बीच एक छोटा सा अकालग्रस्त गांव है, मोजासाल।

उसी गांव के चौधरी पुरखे के घर आज चौथा बच्चा हुआ। सारे घर में खुशी की एक लहर दौड़ गई। लेकिन पुरखा इस सब से दूर बाहर चौपाल पर आगे क्या सोच रहा था। उसने सुना था भगवान अगर चोंच देता है तो चुग्गा भी देता है लेकिन उसको तो मात्र चोंच ही चोंच मिली थी। चुग्गा का नाम नहीं। उसे कभी भगवान पर तो कभी अपनी पत्नि पियारी पर क्रोध आता। हर साल एक संतान एक चोंच। जब भगवान भी हमेशा हर साल एक सामान 'जमाना' नहीं करता तो फिर पियारी को क्या पड़ी है कि वह हर साल…? पुरखे को याद आया जब उसका पहला बच्चा हुआ था तो वो "जमाना" हुआ था कि बाजरा खलिहान में समा नहीं रहा था। सारे कोठार धान से ठसाठस भरे पड़े थे। बीसियों मन बाजरा तो उसने बच्चे होने की खुशी में ही बांट दिया था। उसके बाद दूसरे साल जब दूसरा बच्चा हुआ तो भी 'जमाना' ठीक ठाक था। कुछ पिछले साल का बच गया था कुछ इस साल हो गया था। लेकिन फिर तीसरे और चौथे बच्चे के जन्म से तो जैसे भगवान को नाराज कर दिया उसने।

पिछले साल मामूली बरसात में पांच पांच सात सात मन बाजरा बड़ी मुश्किल से हुआ और इस साल तो चारों तरफ सांय सांय करती लू के सिवा कुछ भी नहीं था। लेकिन बच्चे तो चले आ रहे थे जैसे कर्ज की किस्तें। ओह! उसे याद आया इस साल किस्त में महाजन को वह क्या देगा? पिछले साल भी बड़ी मुश्किल से हाथा जोड़ी करके

महाजन को इस साल का नाम लेकर टरकाया था पर 'जमाने का तो यह हाल है। बरसात के नाम पर एक बूंद पानी नहीं और ठंड तो इस साल ऐसी जैसे कि दादी माँ से कहीं परदेस की कहानियों में सुना करते थे। थोड़ी बहुत इधर उधर साग सब्जी की खेत बची थी वह भी बर्फ की तरह जम गई शीत से पीली पड़ गई। धरती बांझ हो गई पर' पर पियारी उसे फिर से पियारी पर क्रोध आया लेकिन वह जानता था कि उस अकेली का इसमें दोष नहीं। तो वह क्या करे? मन ही मन उसने कुछ निश्चय किया और घर से कुल्हाड़ी ली और खेत की ओर चल पड़ा। लेकिन खेत में खड़े दो चार ठूंठ के समान पेड़ों को काट भी ले तो क्या होगा? कितने दिन इस प्रकार चलेगा?

खेत में खड़े खड़े उसे अचानक एक विचार आया कि वह शहर जाकर कहीं नौकरी क्यों नहीं कर लेता। नौकरी "वह कैसे करेगा? "कहां मिलेगी" ? कई विचार प्रश्नवाचक चिह्न की तरह उसके सामने खड़े हो गए। लेकिन नहीं लोग जो शहर गये हैं उसके गांव के उन्होंने भी तो कहीं नौकरी की है वह भी कहीं ढूंढ ही लेगा। उसने मस्तिष्क को एक झटका दिया और चला आया घर।

लेकिन इस घर बार, इन बच्चों को, किसके भरोसे छोड़ जाय। पियारी क्या ये सब संभाल लेगी? दो गायें दो बैल' क्या इन सब को वो देख सकेगी? हां जरूर देखेगी नहीं देखेगी तो "और चारा भी क्या है? भूखों तो मरा नहीं जा सकता।

शाम की अंधेरी परतों ने जैसे जैसे गांव को लपेटना शुरू किया वैसे-वैसे पुरन का शहर जाने का विचार दृढ़ होता गया।

रात को उसने पियारी को अच्छी तरह से सब कुछ समझा दिया पियारी भी बेचारी क्या करती न चाहते हुए भी पुरन के सामने उसने घुटने टेक दिये। शीघ्र लौट आने की और पैसा बराबर भेजने की कसम का अपना सम्बल अपनी निधि समझकर उसने टूटे मन से अपने पति को सहमति दे दी और दूसरे दिन पुरन ने गांव छोड़ दिया।

पियारी को पुरखे के बिना घर सूना-सूना लगता । रात काटने को दौड़ती, पर क्या करती । अपने को समझा लेती, गम के घूंट पी लेती । बच्चों की देख भाल में ही दिन काट लेती ।

धीरे धीरे तीन महीने हो गये पर पुरखे का कोई समाचार नहीं आया। हां जाने के पांच सात दिन बाद एक समाचार कहलवाया गया था कि वह शहर पहुँच गया है और नौकरी की तलाश में है। तो क्या उन्हें अभी तक नौकरी नहीं मिली? नौकरी के बिना और शहर में कहां रहते होंगे? क्या खाते होंगे? अन्दर-ही-अन्दर पियारी का दम घुटने लगता। यद्यपि यहां घर का दिन उस दिन से अधिक चिन्तायुक्त था। घर में बाजरे का एक दाना नहीं था। पांचें टस' चुकी थीं, एक बैल पहले ही चल बसा था, चारा इतना सा बचा था कि आज समाप्त हो, कल समाप्त हो। फिर क्या होगा? चार बच्चे, दो जानवर, एक स्वयं और ऊपर से पति की चिन्ता। वह तो घुल कर कांटा हुए जा रही थी। बुरे-बुरे विचार उसके मन में उठते कि कहीं उसके पति को कुछ हो गया तो वह कहीं की नहीं रहेगी।

आज यह तीसरा दिन था केवल पड़ौस के घर से मांगकर लाई गई छाछ पर गुजारा करते हुए इन चारों बच्चों का पेट गोबर के उपले बेचकर जहां तक भरती। गोबर भी तो भूखे पेट से कब तक निकलेगा। चारा भी तो बहुत महंगा हो गया है "एक रुपया मण" उसने स्वप्न में भी ऐसा नहीं सोचा था।

धीरे-धीरे उसका गांव भी खाली हो रहा था। अकाल पीड़ित ग्रामीण शरणार्थियों की तरह अपना घर बार छोड़कर इधर-उधर बिखर गये थे।

पियारी को भी अन्त में गांव छोड़ने की नौबत आ गई। उसने सुना कि पड़ौस के गांव से एक सड़क बनेगी और गांव के लोगों को मजदूरी मिलेगी। बस लोग घर बार छोड़ भागकर आ पड़े सड़क के किनारे। एक रुपया आदमी बारह आना औरत और छ आना

बच्चा मजदूरी खत्म हो गई। पियारी सोचती कैसी विडम्बना है। बाकी दुनियां की सारी वस्तुयें महँगी पर आदमी सस्ता। दिन भर सिर पर मिट्टी ढोकर सड़क पर बिछाओ और शाम को १२ आना लेकर पेट भरो।

लेकिन सिक्कों से भी तो पेट नहीं भरा जा सकता। सिक्कों से भी तो कोई नाज ही खरीदेगा। लेकिन नाज कहाँ? एक दो बनियों ने दुकान खोली है पर देता इतना महंगा है कि एक दिन की मजदूरी का नाज दूसरे दिन भी नहीं चले। पियारी सोचती क्यों नहीं पैसों के बदले नाज ही सरकार दे देती इन बनियों से तो छुटकारा मिलता। पर क्या करती उसके बस की बात तो थी नहीं। और आखिर सरकारी नाज की दूकानें खुल ही गयीं। उसे इससे बहुत राहत मिली।

इधर बच्चे दिन भर माँ की अनुपस्थिति में इधर-उधर बिलबिलाते फिरते। बड़ी मुन्नी मुनिया ६ साल की होने को आई दिन भर छोटे मुन्ने को लिए-लिए उसके हाथ ही थक जाते" "जब थक जाती तो रोने लगती, पर कोई पास हो तो रोना सुने यूँ रोते रोते समय कटता जाता और जब आँसू सूख जाते तब कहीं माँ आती लेकिन माँ को इतनी फुर्सत कहां कि वो मुनिया के आँसू देखे। दिन भर काम से थकी मांदी आती और चूल्हे चौकी में उलझ जाती और वहां दूर कैम्प से उसे पानी भी तो लाना पड़ता" रात के प्रथम पहर तक उसे रोटी नसीब होती।

फिर मन-ही मन पति को ढूंढने निकल जाती शहर। शहर उसका देखा हुआ नहीं लेकिन फिर भी कल्पना के पंखों से तैरता उसका मन इधर उधर शहर में उड़ता और अपने पति को ढूंढता। कभी फुटपाथ पर पड़े भिखारियों में तो कभी किसी बाबू के दरवाजे पर वर्दी पहने चपरासियों में तो कभी डरते डरते शहर की उन नालियों में जो भोले भाले ग्रामीण देहातियों को डस लेती है और गांव लौटने लायक नहीं रहने देती। बस इन्हीं चिन्ताओं में उसकी

रात कट जाती और सुबह फिर वही सड़क वही मिट्टी और वही बारह आना।

उसे विचार आता कि वह भी शहर जाय, चाहे भीख ही माँगनी पड़े पर पति को ढूँढ निकाले। कैम्प के बाबू ने उसे शहर चलने का इशारा भी किया। लेकिन गाँव के एक माने जाने वाले चौधरी घराने की बहू भीख माँगे अपनी इज्जत बेचे नहीं अभी उसका स्वाभिमान बाकी है। वह मर जायगी पर ऐसा सोचेगी भी नहीं। पर उसका पति" वह फिर विचारों में डूब जाती।

धीरे-धीरे सड़क जैसे-जैसे शहर के नजदीक पहुँचती जाती उसके अन्तस में दबी एक वेदना कचोटती कि कहीं शहर में उसने अपने पति को नहीं देखा या कुछ ऐसी वैसी परिस्थितियों में देखा तो क्या होगा? उसको विश्वास था अगर उसका पति कुछ खाने-पीने कमाने लायक होता तो उसको जरूर याद करता "लेकिन फिर" इतने दिनों बाद उसने कोई समाचार क्यों नहीं भेजा? हे भगवान् वह कहाँ होगा कैसा होगा?

अन्त में उसने निश्चय कर ही लिया चाहे कुछ भी हो अब वह शहर जायगी और पति को ढूँढ निकालेगी। अब उसके अपने हाथों बनी उसके श्रम और पसीने से सींची सड़क शहर से केवल एक मील के करीब ही रह गई थी जो रोज शहर जायगी और पति को ढूँढा करेगी। और सचमुच ही वह एक दिन शहर पहुँच गई।

लेकिन यह क्या? वह तो देखकर दंग रह गई। जगमगाती गगन चुम्बी अट्टालिकायें चकाचौंधी बिजली सड़कों पर हवा समान भागती मोटर गाड़ियाँ। सड़क पर चलते युवक युवतियों की खिलखिलाहट" वह सोचने लगी कहाँ है अकाल वह भयंकर अकाल जिसके कारण गाँव के गाँव उजड़ गये। हजारों हरे भरे खेत श्मशान से वीरान हो गये" कहाँ है वह अकाल जिसके कारण गाँव के भोले भाले बच्चे रोटी रोटी करते इधर उधर बिखर गये। हजारों भूखे परिवार दर दर की ठोकरें खा रहे हैं। कहाँ है वह अकाल जिसके कारण वह

आज भीख मांगने और इज्जत गंवाने तक की स्थिति में पहुंच गई। नहीं यह सब झूठ है यहां कहीं कोई अकाल नहीं है कोई कमी नहीं है।

यहां किसी का कोई घर नहीं उजड़ा किसी का पति किसी को छोड़कर नहीं गया। यहां किसी के बच्चे भूख से नहीं बिलबिलाये। हे भगवान—ये सब क्या है ?

क्या अकाल हमीं है ? क्या अकाल हमारे लिए ही है ? क्या अकाल से गांव ही उजड़ते हैं शहर नहीं ? अकाल से गरीब किसानों ही के गाय-बैल मरते हैं शहर की घोड़ा गाड़ियों और मोटर गाड़ियों को कुछ नहीं होता ? अकाल से गांव के बच्चे ही भूख से तड़प-तड़प कर मरते हैं—शहर के टोस्ट मक्खनों को कुछ नहीं होता—अकाल में हमारे झोंपड़ों में ही आग लगती है शहर की अट्टालिकाओं को कुछ नहीं होता ?

नहीं-नहीं यहां कुछ नहीं है कुछ भी नहीं है। उसके मस्तिष्क की नसें फूल गईं—वह पागल की भांति विक्षिप्त हो गई। उसकी इच्छा हुई कि वह जोर-जोर से चिल्ला चिल्लाकर शहर के इस व्यस्त जीवन को वहां का वहां रोक दे और एक-एक आदमी को अपने गांव का हाल गला फाड़ फाड़ कर कह सुनाये कि जहां जिन्दगी में संघर्ष है तो केवल भूख से—झगड़ा है तो केवल पेट से—जहां आदमी केवल रोटी की बात सोचता है—जहां की व्यस्तता बच्चों की भूख प्यास बुझाने के लिए ही है—आज उसे पहली बार लगा जैसे मनुष्यों की दो अलग-अलग जातियां धरती के एक ही टुकड़े पर पल रही हैं।

मोटरों और बसों के पोंपों तथा गर्द-गर्द के बीच उसके मस्तिष्क में क्रोध और पश्चाताप की घुटन बढ़ने लगी और कुछ क्षणों बाद उसे लगा जैसे वह अपने मस्तिष्क का सन्तुलन खो देगी। अचानक ही उसके मुंह से एक चीख निकली और वह बेसुध होकर सड़क पर गिर गई। कुछ ही क्षणों में उसके आस-पास लोग इकट्ठे हो गये। तरह

तरह की व्यंग्योक्तियाँ सुना सुनाकर भीड़ छँट गई। लोगों ने समझा कोई पागल औरत गर्मी से बेहोश हो गई है। लेकिन इस भीड़ में फटे हालों में एक आदमी भी था जिसने उसे पागल नहीं समझा और भीड़ छट जाने के बाद भी उसके करीब खड़ा आँसू बहाता रहा और उसके होश में आने की प्रतीक्षा करता रहा—वह था उसका पति—गाँव का चौधरी—पुरखा !



● दीपंकर चौहान

एक चंगुल : एक बंदी

नौकरी करोगे ?

बड़ी दया होगी सरकार ! इसीलिए तो इतनी दूर से आया हूं।

कोई बड़ा काम नहीं है। बस बगीचे की रखवाली करनी है। लेकिन तुमने अपना नाम तो बताया ही नहीं ?

'मुझे जग्गू कहते हैं हुजूर।'

'कल से बगीचा तुम्हारे जिम्मे रहा। देखो कोई शिकायत नहीं आने पाये।

'मालिक को कभी शिकायत का मौका न दूंगा।

'इसी की चिन्ता कर रहा हूं, सरकार। आसपास कोई सस्ता मकान मिल जाय तो"""।

रामचरन अपना यह जो नीम के पास वाला मकान खाली है न इसी में जग्गू रहेगा। क्यों छोटा तो नहीं पड़ेगा रे ?

'नहीं सरकार दो ही तो प्राणी हैं।

'अभी कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ ?'

नहीं सरकार पारसाल तो शादी हुई है।

'कोई बात नहीं हो जायेगा। फिर यह नीम वाला मकान ही ऐसा है ! बिरजू के भी पहला बच्चा यहीं हुआ था।'

बिरजू की अब क्या पूछो पैसे वाला बन गया है सरकार। अब तो उसने एक अच्छा-खासा मकान भी बनवा लिया है। यह सब आपके पास रहने का ही प्रताप है।

हां रामचरन जग्गू को मुनीम जी से पचास रुपये पेशगी दिलवा...

दो ! चम्पू जाकर अपनी घर वाली को ले आयेगा और फिर आकर काम शुरू कर देगा ।'

'बड़ी दया है सरकार । पर मैंने मकान का किराया तो पूछा ही नहीं ।

× × ×

'सेठ जी कल तुम्हारे यहां ही भोजन करेंगे ।

मेरे बड़े भाग्य जो मेरी कुटिया पवित्र होगी ।

सेठ जी मस्त प्रकृति के हैं । उनमें ऊँच-नीच का भाव तो है ही नहीं । दूसरा कोई होता तो सीधे मुंह बात भी न करता ।

''रामचरण तुम्हारा भला हो जो मुझे ऐसा मालिक तुमने दिला दिया ।

सब भाग्य की बात है । देखो चम्पू ज्यादा तैयारी न करना । सेठ जी का सादा भोजन ही पसन्द है । उन्होंने यह कहलवाया भी है ।

× × ×

''रामचरण रात अपने यहां चोरी हो गई । तिजोरी का ताला तोड़कर कोई बारह हजार रुपया ले गया ।

'सरकार यह तो गजब हो गया । पुलिस को जल्द रिपोर्ट कीजिए ।

''हां जरा चम्पू को तो बुलाना ।

मैं वहीं से आ रहा हूं । चम्पू अभी घर पर नहीं है ।

'रात को वह मेरे पास ही था । फिर जाने कब चला गया । तुम जाओ उसकी तलाश करो । मैं पुलिस को जाके रिपोर्ट देता हूं ।

×

टन-टनन-टन

''हलो कहां से !

'पुलिस स्टेशन से। आपका नौकर बम्पू गिरफ्तार कर लिया गया है। इस सम्बन्ध में रामचरण से काफी सहायता मिली। आप जल्द आइये।

"बस अभी आया।

× × ×

"तुम्हारा ही नाम बम्पू है ?

'हां सरकार।

तुमने अपने मालिक सेठ चरणदास के यहां चोरी क्यों की ?

इसलिए कि इस रकम से पिस्तौल खरीदूं और सेठ जी का काम तमाम कर दूं। हालांकि मेरी नीयत केवल पिस्तौल चोरी करने की थी पर उसके अभाव में मैंने रुपये चुराये।

'ऐसा तुम क्यों करना चाहते थे ?

'सेठ जी ने विश्वासघात करके मेरी स्त्री के साथ बलात्कार किया।

'तुम उस समय वहां थे ?

मेरी स्त्री को अकेला करने के लिए सेठ जी ने मुझे किसी काम से कानपुर भेज दिया था।

"क्या तुम्हारी पत्नी सब कुछ यहां कह देगी ?

'हां, कहना ही पड़ेगा सरकार।'

'और वह रुपया।

मेरे पास है। बस कुछेक ही खर्च हुए हैं।

× × ×

बम्पू जो कहता है क्या वह ठीक है ?

हां सरकार।

'उस समय तुम्हारा पति कहाँ था ?

रामपुर। सेठ जी ने ही उन्हें वहाँ भेजा था।

सेठ जी तुम्हारे घर में घुसे तो उन्हें तुमने रोका नहीं।'

नहीं सरकार।

'क्यों ?

वे इसी प्रकार उनकी उपस्थिति में भी कई बार आते थे और भोजन भी यहीं करते थे।

'क्या उस दिन भी तुमने उन्हें भोजन कराया ?'

हाँ, सदा की तरह ही समझकर।

'क्या सेठ जी अकेले ही थे ?

नहीं उनका नौकर रामचरन भी था।

जिस समय तुम्हारे साथ यह दुर्घटना घटी, उस समय भी क्या रामचरन उपस्थित था।

नहीं।

"तो वह यहाँ से कब गया ?

'जब सेठ जी भोजन कर रहे थे।

"रामचरन को जाते वक्त क्या तुमने देखा था ?

"नहीं मैंने सिर्फ दरवाजा बन्द होने की आवाज सुनी थी।'

'भोजन कर चुकने के बाद सेठ जी ने हरकत शुरू की होगी।

"नहीं, वे कमरे में बिछे बिस्तर पर जाकर लेट गये।

"तब तुम क्या कर रही थी ?

रसोई घर का बाकी बचा काम।

फिर क्या हुआ ?

'वह कब जायें और मैं कब दरवाजा बन्द करके सोऊं, इसके लिए मैं इन्तजार करती रही।"

'फिर।

'सेठ जी आए नहीं। बोले अब मेरे से नहीं जाया जायगा! मैं आज रात यहीं रहूँगा। और मुझे तुम बाहर बैठी क्या कर रही हो?"

उन्होंने मुझे पुकारकर भीतर बुलाया। मैं कमरे में आकर वहीं दूसरी ओर बिछे बिस्तर पर बैठ गई। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया लेकिन मैं वहाँ से उठी नहीं!

तब वे बोले— गाँव वासियों में यही तो बात है! बस शर्म ही शर्म। अभी कोई बाहर वाली होती तो कभी की चहक-चहक कर बोलने लगती।

'उसके बाद तुमने क्या किया?

मैं उनके पास जाकर खड़ी हो गई। उन्होंने बैठने के लिए अधिक आग्रह किया तो मैं उनके पलंग पर बैठ गई।

वे बोले—'आजकल घर का खर्च कैसे चलता है? कोई कमी तो नहीं पड़ती यह कह कर उन्होंने मेरे हाथ को सहलाया। मैं शर्म से गड़ी जा रही थी। बड़ी मुश्किल से फिर अपना हाथ छुड़ाया!

'फिर क्या हुआ?

'क्या नींद आ रही है उन्होंने मुझसे पूछा? और मैं हाँ कहकर झट से जा कर पास के बिस्तरे पर सो गई!

'क्या तुम्हें सेठ जी की बुरी नीयत का तब भी अन्दाज नहीं हुआ?

नहीं पहले तो मैं डरी! बाद में सोचा सब आदमी एक से नहीं होते। फिर सेठ जी तो दयालु हैं ऐसा-वैसा क्या करेंगे? यदि चाहते तो अभी ही क्यों छोड़ते?

"फिर क्या तुमने नींद ले ली?

"नहीं मुझे जल्द ही सेठ जी के खर्राटे सुनाई दिए। सांत्वना-सी हुई। फिर मुझे भी नींद ने आकर घेर लिया।

'उस घड़ी का हाल क्यों नहीं कहती जब तुम्हारे साथ यह बात हुई ?

"मैं पलंग से हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई और भागने लगी। लेकिन पक्षिणि की तरह दरवाजे के पास आकर खड़ी हो गई क्योंकि दरवाजे की बाहर की कुण्डी बन्द थी।

'फिर ?

"उन्होंने जगह-जगह से मुझे नोच खाया। ऐसा लगा जैसे मैं किसी पशु के पल्ले पड़ गई हूँ। मैं बेहद घबड़ा गई थी। अन्त में मैं बेसुध हो गई और मुझे कुछ होश नहीं रहा।

× × ×

उस दिन रामचरण दरवाजे की कुण्डी लगा कर सीधा सेठ जी की पत्नी बीणा के पास पहुंचा। उसने उस रात्रि का सेठ जी का सारा कार्यक्रम बीणा को सुना दिया।

बीणा सेठ जी की सारी करतूतों को तभी से जानने लगी थी जब से उसने सेठ जी के निकटस्थ सेवक इस रामचरण को गांठ लिया था। सेठ जी के प्रति बीणा पहले से ही सन्देहशील थी। उनके रंग-ढंग आखिर कहां तक छिपे रहते। इसीलिए बीणा ने एक दिन रामचरण को अपने पास बुलाया और कहा 'तुम मुझे सेठ जी का सारा हाल चाल रोज दे दिया करो। मैं तुम्हें खुश करने में कभी पीछे नहीं रहूँगी।"

बरजू की पत्नी जैसे सेठ जी के कार्यक्रम कई बार निश्चित होते। रामचरण बीणा को एक-एक कर हाल तफसील के साथ सुनाता। इस सुनाने-सुनाने में रामचरण सेठानी से काफी इनाम पाता। बीणा का आदेश था सेठ जी की गति-विधि सम्बन्धी छोटी से छोटी बात भी वह न छोड़े।

एक दिन बिरजू और उसकी सुन्दर पत्नी नीम वाले इसी मकान

में आये। सेठ जी ने परिचय की आरम्भिक मंजिल पार की। एक दिन अवसर पाकर सेठ जी ने बिरजू की पत्नी को छू लिया। बिरजू की पत्नी का विरोध करना तो रहा दूर, उसने अनाकानी जैसी कोई हरकत तक न की। फिर क्या था सेठ जी और बिरजू की पत्नी के सीधे सम्पर्क का मुहूर्त भी जल्द ही सम्पन्न हो गया। उस समय रामचरन भी उपस्थित था।

यह तथा इस तरह की अन्य घटनाओं की सारी कहानी रामचरन मौका पाकर बीणा को सुनाता। वर्णन के एक-एक अवयव को उभार कर। आखिर हालात ने यहां तक पैर फैला लिए कि बीणा को इस राग में थोड़ा-थोड़ा सुख मिलने लगा।

एक जमाना था जब पति से उपेक्षित इस पत्नी ने खूब-खूब आंसू बहाये थे लेकिन अब यही बीणा इन कहानियों को सुनकर उत्तेजित हो जाती और लपककर रामचरन से लिपट जाती। फिर दोनों मिल कर सेठ जी को नीचा दिखाने और भाग कर कहीं चले जाने के मन्सूबे बांधते।

जग्गू और सेठ जी के मुकदमे की भी सारी वार्ता रामचरन ने बीणा को आकर कह दी।

इसी संदर्भ में बीणा ने सोचा—ये रोज रोज के किस्से कब तक चलेंगे। क्यों न मैं सेठ से सदा-सदा के लिए पीछा छुड़ा लूं और इस पिंजरे से मुक्त-मुक्त हो जाऊं। मेरा और रामचरन दोनों का छोटा सा संसार बस जायेगा जहां किसी भी प्रकार की उपेक्षा अपमान और बंदिश नहीं होगी जहां आंसुओं से भरी आंखों की झील हर्षोल्लास से लहरा उठेगी।

कोर्ट के कटघरे में खड़ी होकर सेठ का सारा भंडा फोड़ कर दूंगी और कहूंगी जिस रात जग्गू की पत्नी के साथ यह वारदात हुई, उस रात सेठ जी अपने बंगले पर नहीं थे। साथ ही मैं ऐसे कई और मामलों से भी सरकार को अवगत कराऊंगी और कहूंगी कि सेठ जी ने मुझ पर बहुत अत्याचार ढाये हैं।

कहने के लिए मैं सेठ जी की पत्नी अवश्य हूँ मगर सच पूछा जाय तो मैं उनके बंगले की केवल एक बन्दिनी बन कर रह रही हूँ। मैं अब सेठ जी से सदा-सदा के लिए विच्छेद चाहती हूँ। मैं अपने सुखों को दांव पर लगा कर ही यहां पर आई हूँ। मजबूर होकर ही मुझे यह कदम उठाना पड़ा।

× × ×

अदालत का कमरा। जग्गू की पत्नी का मामला पेश था। सेठजी का वकील बहस कर रहा था— "योर ऑनर! सेठ जी पर जग्गू की पत्नी बिल्कुल झूठा इल्जाम लगा रही है। आप जानते हैं कि एक पत्नी अपने पति के बचाव के लिए क्या कुछ नहीं कर सकती? इन सिखाए-पढ़ाए और रटे रटाये बयानों के आवरण में वह अपने पति की चोरी के इतने बड़े केस को छिपा देना चाहती है।"

जग्गू का वकील— "नहीं, योर ऑनर! जग्गू की पत्नी के साथ जो इतना बड़ा अन्याय हुआ है उसका सही फैसला होना ही चाहिए। सेठ जी ने अपनी बुरी नीयत के कारण जग्गू को कानपुर भेजा और जब उसकी पत्नी अकेली रह गई तो ...।"

जग्गू का वकील अभी अपनी बात पूरी कर भी न पाया था कि रामचरन के साथ बीणा ने अदालत के कमरे में प्रवेश किया और अपने बयान से मामले का नक्शा ही पलट दिया।

जज ने सेठ जी को कुसूरवार ठहराया। उन्हें समाजद्रोही माना गया था। रामचरन सहायक कुसूरवार ठहराया गया। जग्गू भी पूर्णतया दोषमुक्त सिद्ध नहीं हो सका क्योंकि उसने कानून को हाथ में लेकर चोरी जैसा अपराध किया था।

पेशी के बाद बीणा सीधी जग्गू की पत्नी के पास पहुँची और उसका हाथ अपने हाथ में थाम अदालत से बाहर आ गई।

तब से बीणा और जग्गू की पत्नी किराये का मकान लेकर एक साथ रहती हैं।

●

●प्रेम सक्सेना

नये नोट

उसने बड़ी शान से, एक बालिश्त लम्बे चौड़े बीच में ज्योंही सोना स्वयं को कुछ ऊपर उठा पाया, जैसे जमीन पर से उसके पैर उठ गये हों बिना परों-पंखों के ही वायु में हंस गति से ऊपर उठता ऊपर उठता आगे बढ़ता महसूस किया। छोटी मुर्झाली मूँछों को अन्तिम बार उमेठ कर उसने बगल में खड़ी धुले-धुलि मय चांद-सी पत्नी गोरिया की ओर प्यार से निहारा और लज्जा से झिलमिलाते उसके गुलाबी गालों पर एक हल्की सी चपत लगा कमरे के कोने में रखी पीतल की पोला मढ़ी लाठी लाने के लिए कहा।

गोरिया उस समय असम्भावित और अनायास ही उदास खड़ी अपने पति की शहर-यात्रा की तैयारी को अनमनी आँखों पी रही थी। शहर और दिनों की तरह उसने उसके कार्यों में हाथ नहीं बटाया। शहर का पहली बार देखने की खुशी और नई-नई बातें जानने और फिर उन्हें रात के समय सोते समय गोरिया को सुनाने पर मिलने वाले आनन्द की कल्पना में इतना विभोर रहा कि गोरिया की उदासी उसका अनमनापन व उसके कार्यों में हाथ न बटाने की घटना—इन सबके प्रति वह प्राय अचेत रहा। लेकिन जब इस तरह प्यार भरी धीमी चपत का उत्तर गोरिया ने हमेशा की तरह उसकी बाहों में समाकर नहीं दिया तो उसे कुछ सोचने गोरिया की तरफ ध्यान देने के लिए बाध्य होना पड़ा। अपने जाने और दिन भर घर से गाँव से, खेत से अलग गोरिया से दूर शहर में रहने को ही उसकी उदासी का कारण समझ वह अत्यन्त धीमे दुलार भरे प्राय फुसफुसाहट के शब्दों में उसे समझाने लगा कि उसे डरने अथवा घबराने की चिन्ता करने की कोई

आवश्यकता नहीं। वह उसके लिए शहर से यहाँ अनदेखी अलभ्य कल्पनातीत नितान्त आश्चर्यजनक और मनमोहक वस्तुएं लायेगा। वह उसके लिए पांच रुपये दाम वाले सोने के से रंग वाले ताम्बे की बड़ी बालियां लाकर देगा जिन्हें वह एक साल से पाने की इच्छा प्रकट करती आ रही थी। यदि हो सका और बनिये ने उसके सारे धान को बेच दिया होगा और उससे रुपया मिल गया तो वह भी लाल से प्यारी आंखों की सुनहरी गोरिया को हाथीदांत का चूड़ा लाकर देगा जिसे वह पहनकर चारों ओर लिपट-लिपट जायेगी उसकी बाहों में झूम झूम जायेगी।

सूर्य का आधा भाग पश्चिमी आकाश की कोर में डूब चुका था। बाकी आधा भट्टी में तपाये लाल लोहे की तरह दमदमा रहा था लेकिन उस ओर देखने पर आंखों को चमक या चौंध नहीं लगती थी एक प्रकार का सुख ही मिलता था। खेतों की हरियाली में वह किसी नीरव कल्पनातीत लोक-विहारिणी के आरक्त मुख का स्मरण कराता था। पूर्व की ओर से अन्धकार का दैत्य बढ़ता चला आ रहा था। मीलू अभी आधा रास्ता ही नाप पाया था। अधिक अंधेरा पड़ने और रात के गाढ़े होने से पूर्व ही वह अपने गांव पहुंच जाना चाहता था। सशंक वह चारों ओर देख भी लेता था। उसे शायद अपनी मूर्खता पर गुस्सा आ रहा था। वह स्वयं की भर्त्सना करने लगा। इस सुनसान प्रदेश में उसने अकेले यात्रा कर अच्छा नहीं किया यदि वह अपने मित्रों—मेहरसिंह और स्वर्णसिंह का कहना मान लेता उनके साथ कल ही लौट आता तो उसके लिए अधिक उचित सुरक्षित और हितकर रहता। उन्होंने तो बहुत रोका था अगले दिन और नई-नई चीजें दिखाने का वायदा किया था लेकिन वह किसी भी तरह स्वयं को इसके लिए तैयार नहीं कर सका था। वह शीघ्र से शीघ्र घर पहुंचकर बाट जोहती गोरिया को सब कुछ बता देना चाहता था- शहर का आकर्षण वहाँ की अम्बना विशाल अट्टालिकाएं, जगमगाती हुई व दनादनाती मोटर गाड़ियां

जगह-जगह पर रेडियो और लाउड स्पीकरों से निकलने वाला सुमधुर सम्मोहक संगीत—सब कुछ उसके सामने उडेल देना चाहता था।

वह सोचने लगा—इस सबको सुनकर गोरिया के विशाल नयन आश्चर्य से विस्फारित और अधिक विस्तृत अधिक गोलाकार हो जायेंगे भौंहों की कमानों को अधिक तानकर फूले गदराये गालों में उंगली गड़ाकर पूछेगी— यह सब सच है ? झूठ बोलते हो। यह तो परलोक की बातें हैं चलो हटो। और उसे धीरे से ठेल देगी। जिसका मतलब होगा कि वह आगे बढ़कर उसे अपनी बाहों में कस ले और वह मना करती रहे ।

'किथे जाणा भाई ? लालगढ़ कित्नी दूर है —सुनकर उसकी तन्द्रा कच्चे धागे की तरह निःशब्द टूट गई। बायीं तरफ उसके साथ साथ कदम से कदम मिलाकर दो व्यक्ति और चल रहे थे। वे कब उसके साथ आ मिले वह जान नहीं पाया। दोनों हट्टे-कट्टे बांके जवान थे। सिर पर गहरे लाल रङ्ग के साफे शरीर पर महीन मलमल के चोले जिनके भीतर से गुलाबी बनियानें झांक रही थीं व नीचे नीले तहमद पहन रखे थे। कपड़ों से एक चमक सी निकलती। कपड़े इतने बढ़िया कि उनमें से सरसराहट की ध्वनि उभरती थी।

ओ बिचवा गया —बीरू ने अपने कपड़ों की तरफ देखा। उसे सन्तोष हुआ कि पहनावे में वह उनसे कम नहीं कि उसके वस्त्र उतने ही बढ़िया उतने ही चमकदार, उतने ही रंग-रंगीले हैं। सीना तानकर वह तेज चाल से आगे बढ़ने लगा।

सहयात्रियों को अपने काल्पनिक सुख में बाधक समझकर उनके प्रति निर्लिप्त विचार-तन्तु को पकड़ कर वह चुप सोचने लगा। शाम का सिनेमा कितना बढ़िया था। इतनी जल्दी-जल्दी ये आदमी परदे पर किस प्रकार खड़े हो जाते थे और आपस में कुछ घुल-घुलाकर करतब दिखाकर फिर चले जाते थे। एक दो आदमी नहीं भीड़ की भीड़ झुण्ड के झुण्ड बड़ी-बड़ी इमारतें आतीं और एक ओर सरक जाती। एक के बाद दूसरी शायद कोई पीछे से डोरी खींचता जा रहा था और वह नोटों की वर्षा

उसने तुरन्त मुड़कर अपनी बैलों की तरफ देखा। उसे सन्तोष हुआ और फिर आगे चलने लगा उसी तेज चाल में अपनी ही कल्पना की उड़ान में खोया हुआ।

उन्होंने चीनू से पुनः प्रश्न किया "चाचा! तुम्हारे गांव में खेती कैसी है? हमारे यहां तो अबकी बार कमाल न कमाल कर दिया। जिसके पास एक भी बीघा जमीन थी वह तो लखपती हुआ समझो। इस बार मैं ऊपरम क्या बोला है।" दोनों राहगीर येन-केन प्रकारेण उससे हेल-मेल बढ़ाकर उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने व उससे कुछ न कुछ कहलवाने का अथक परिश्रम कर रहे थे। लेकिन चौथूसिंह भी एक था जो न दायीं तरफ के ईख के खेतों से उदास था, न बायीं ओर लहलहाती खेती के हरे खेतों का उसके लिए मूल्य था न उसकी पूरी सड़क के समानान्तर बहने वाली नहर उसका उपहास किनारों पर पंगुल भर घास की सोंधी सुगन्ध था न सहयात्रियों की बातों में रस रह था। अपने तक ही अपने गांव के घर में बैठी गोरिया तक सीमित था। कल्पना का सूत ज्यों-ज्यों बल पकड़ता उसमें [illegible] उतना ही विभोर होता जाता। उसके लिये यदि कुछ भी महत्वपूर्ण था तो अपनी अकेली घरवाली को शहर के आश्चर्यचकित कर देने वाले उपकरणों का सम्पूर्ण विवरण सुनाने का। सुनते ही आश्चर्य उसकी आंखों में समाता चला जायेगा। सुन्दर वस्तुओं का वर्णन मनमतीत बना देगा। उस समय भी उसको सुन्दर मालों में गढ़ी हुई चैंपली कोहनी तक गजरा छाया हुआ हाथीदांत का चूड़ा उसकी कलाइयों का सुनाव यह सब कितना सुन्दर होगा!

पहले इन सब बातों को झूठ मानेगी कहेगी—यह कितना चालूमी हो गया है। यह उसे अब शहर नहीं जाने देगी। कितनी बातें सीख गया है। मैं उसे समझाऊंगा कि यह सब सच है सौ विस्वा सच। तब वह मचलकर कहेगी कि वह भी उसके साथ एक बार शहर चलेगी। उस समय गुलिया रंग की ओढ़नी पर बेल बूटों वाली रेशमी सलवार

सुनहरे रंग की चुन्नी बाहों व कफों पर जरी का काम की हुई कमीज पहनेगी—जिन्हें उसने शादी पर पहिना था और अब बड़े बतन से भरे हुए हैं। वह पीछे होगी वह आगे। चलते समय पैरों के गठने जो बजेंगे तो राहगीर देखेंगे सड़क पर चलते लोग देखेंगे वह सिनेमा जायेगी वहां नोटों की वर्षा ।

और उसका हाथ फिर जेब तक गया। उसने टटोलकर महसूस किया और फिर सीना तान कर और तीव्रता से आगे बढ़ने लगा कि रास्ते पर पड़े पत्थर से उसका पांव टकरा गया। ज्यादा चोट तो नहीं आई है देखने के लिए नीचे झुका ही था कि उसकी बगल में एक नुकीली चीज घुस गयी। वह सम्भल कर सीधा भी नहीं हो पाया था कि एक दूसरा छुरा उसके सीने में आ धंसा। वह एक चीख के साथ वहीं ढेर हो गया उसकी पोलेदार लाठी पास ही गिर गयी व कन्धे पर से सरककर गठरी एक ओर जा गिरी।

सहयात्रियों ने अंधेरे में एक दूसरे की ओर देखकर अपनी-अपनी सफलता पर आंखों ही आंखों मुस्कराकर एक दूसरे को बधाई दी। दोनों हो ने झुक कर उसकी जेब में भरे कड़कते नोटों को निकाला और इस कागतलाशी में जब अचानक ही बैट्री का तीव्र प्रकाश उन नोटों पर पड़ा तो वे सहम गये। उनमें से एक चिल्लाया "अरे ये तो नकली नोट हैं, एक-एक आने वाले जो बाजार में बिकते हैं।



●मनोहर वर्मा

और मान वह गया

बबलू ने आज कोई पहली बार ही दूध के कप में ठोकर नहीं मारी थी। पहले भी कई बार कप तक उठा कर फेंक चुका है। इन बातों की पुनरावृत्ति इसीलिए होती जा रही है कि शेखर, बबलू की हर ज़िद पूरी कर देता है। और उर्मिल को यह बात नहीं सुहाती। शेखर का बबलू के प्रति यह अत्यधिक प्यार उसे बुरा लगता है। इसका मतलब यह नहीं कि उर्मिल के हृदय में ममता न हो या कि पुत्र के प्रति प्यार न हो। सब कुछ है पर उसके ज्यादती भरे बालहठ को वह किसी भी तरह स्वीकार नहीं कर पाती।

आज जब बबलू ने कप को ठोकर मार कर दूध फैला दिया और गुस्से में आकर पास प्लेट से डबलरोटी काटने की छुरी उठाकर उर्मिल पर फेंक दी तो उर्मिल का हाथ उठ गया। एक ही चांटे में बबलू की हिचकी बंध गई।

क्या बात है उर्मिल' बाथरूम से निकलते हुए शेखर ने पूछा।

उर्मिल कुछ नहीं बोली। चुपचाप डबलरोटी के टुकड़े पर मक्खन लगाती रही। शेखर ने देखा-बबलू फैले हुए दूध में ही लोट रहा है। हाथ मार-मार कर चिल्ला रहा है। तो शेखर जिसे बबलू का ज़रा सा रोना भी अखरता है भला कैसे चुप रह जाता।

उर्मिल ! तुम कैसी मां हो ! तुम्हारे हृदय में बच्चे के प्रति ज़रा भी प्यार नहीं। इस बेदर्दी से मारते हुये शर्म नहीं आती तुम्हें ?" बबलू को पुचकारते हुये शेखर बोला अगर तुम्हारे हाथ इतने ही मचलते हैं तो दीवारों पर क्यों नहीं चलातीं।

'मगर मैंने इसे कहा क्या है ? ज़रा पूछिये तो ? उर्मिल धीरे से बोली-इस डर से कि कहीं सुबह-सुबह तकरार न हो जाय। बबलू शेखर की गोद में आकर और जोर से रोने लगा। शेखर ने बबलू के आंसू पोंछते हुये पूछा 'क्या हुआ बेटा ? मम्मी ने मारा।

'मम्मी' 'बिस्कुट' नहीं देती सिसकियां भरते हुये बबलू ने मां की शिकायत की।

उर्मिल बड़ी गन्दी आदत है तुम्हारी। जरा-सी चीज के लिये उसे सुबह-सुबह रुला दिया। बच्चा है इसी उम्र में नहीं खायगा पियेगा तो फिर कब खाएगा ? तुम्हारे हृदय में ममता तो लेश मात्र भी नहीं है उर्मिल। पता नहीं क्यों ईश्वर ने तुम्हें मां बनने का सौभाग्य दे दिया। आवाज को धीमें करता हुआ शेखर बोला।

'मैंने कौन से इसके बाल कर लिये हैं। कुछ तुनकती हुई बोली उर्मिल। यही तो कहा था कि पहले मंजन करलो तब दूंगी बिस्कुट। कोई बुरी बात कही थी मैंने ?

क्या हो जाता अगर आज बिना मंजन किये दूध पी लेता तो ? बच्चा ही तो है। शेखर के कथन में तेजी आ गई। सच बात तो यह है उर्मिल कि न तो तुम्हें बच्चे रखना ही आता है और न तुम्हारे हृदय में बच्चे के प्रति लाड़दुलार ही है।

बस ! आपका यह प्यार ही किसी दिन इसके लिये अभिशाप बन जायगा। आप हमेशा उसकी जिद पूरी कर देते हैं और इसीलिए वह जिद्दी और उद्दण्ड होता जा रहा है। बच्चे की जिद पूरी करना भी कोई प्यार करने का ढंग है ?

उर्मिल ने शेखर व बबलू की ओर चाय व नाश्ता बढ़ा दिया। बबलू ने फिर प्लेट में ठोकर मार दी— मैं मम्मी के हाथ की न— नहीं पीऊंगा।

उर्मिल ने बिखरा हुआ नाश्ता, प्लेट में डालते हुये शेखर की तरफ देखा। शेखर उर्मिल से आँख नहीं मिला सका। नजरें झुक गईं। ज़मीन पर झुकते ही नजर उर्मिल के हाथ पर गई। कलाई के पास से खून बह रहा था। बच्चे के आंसू से द्रवित होने वाला शेखर, पत्नी का खून देख कर भी स्तब्ध रह गया। उस खून भरे गोरे और कोमल हाथ को पकड़ कर उर्मिल की ओर देखते हुये बड़ी कोमलता से पूछा

क्या हुआ उर्मिल ?

बबलू को प्यार न करने की सजा। उर्मिल की भीगी पलकों से दो आंसू ढुलक पड़े। शेखर कुछ बोल न सका। उठ कर चल दिया।

इत्तिफ़ाक की बात थी कि शाम को जब शेखर दफ्तर से घर लौटा तो फिर बबलू रोता हुआ मिला। शेखर सुबह की बात से क्षुब्ध था। दिन भर उसका उदासी में ही बीता था। फिर आते ही बबलू भी रोता मिला। तो, खीजते हुये शेखर ने उर्मिल को आवाज दी और बोला

"क्या बात है उर्मिल ? तुमसे बबलू नहीं संभलता तो उसे बाहर क्यों नहीं दे देती ? या किसी अनाथालय में क्यों नहीं देख देती ? शेखर गुस्से में कहे जा रहा था आखिर इसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? क्यों इस नन्हीं सी जान के पीछे पड़ी हुई हो ?

"आपने मेरी भी बात सुन कर यह बातें कही होतीं तो कोई बात थी। इसका रोना तो आपको दिखता है और मैं मन ही मन रो रो कर मरी जा रही हूँ, वह आपको नहीं दिखता। एक दिन घर पर रह कर देखें तो लाडले की करतूतें मालूम पड़े।"

"क्या किसी पर छुरियां चलाता है ? चोरी करता है ? आखिर क्या करता है ? शेखर गुस्से में उबल पड़ा "अच्छा है, तू ही लड़-झगड़ लेता होगा। कौन सा बच्चा माँ-बाप के आगे हठ नहीं करता।

"अगर यही एक बात हो तो बर्दाश्त की जा सकती है। पर दिन भर कभी इसे छेड़ा उसे फोड़ा। इसे मारा उसे पीटा। किसी का कुछ छीन कर खा गया तो किसी का कुछ बिखेर दिया। यह सब बातें भी घर में हों तो सहन करलूं। पर पड़ोसी-पड़ोसी कब रोज रोज के नुकसान और मार-पीट सहन करेंगे?" शेखर चुपचाप सुन रहा था। उर्मिला कहे जा रही थी, "आपको दफ्तर में कोई कुछ कहने नहीं आता। सब शिकायतें और भला-बुरा मुझे सुनना पड़ता है। कोई तो गाली भी देता है, तो सहन करना पड़ता है।' कुछ देर ठहर कर उर्मिला फिर धीरे-धीरे शांति से बोली—आज ही राकेश की गेंदी छीन कर खा गया। दोनों लड़ पड़े, तो यह राकेश की कमीज फाड़ आया। इस मंहगाई के जमाने में भला कौन सहन करेगा रोज-रोज के नुकसान? राकेश की माँ ने बीच गली में खड़े होकर गालियां दीं—कि बच्चे समझते नहीं और चल-चल कर छोड़ देते हैं। खिला-खिला कर मोट कर रखा है छोरे को। हमारे बच्चे कमजोर हैं तो क्या पिटने को हैं? अब आप ही बताइये—कौन माँ अपने बच्चे को वक्त—बे वक्त चल-चल के मुंह आने देना पसंद करती है? पर क्या करूं, सब मेरी किस्मत की बात है। और उर्मिला की आंख से फिर आंसू टपक पड़े। पर वह कहे जा रही थी

"लाड़-प्यार तो सभी करते हैं पर लाड़-प्यार के भी ढंग होते हैं। कौन माँ अपने ही बच्चे को प्यार नहीं करती किन्तु आपकी तो अपनी ही दृष्टि है। लोग जो मन में आती है कह जाते हैं—भला कब तक चुप रहा जा सकता है और फिर भी दोष का भांडा बेचारी मां पर ही तो फूटता है—कि मां ने बिगाड़ दिया कुछ सिखाया नहीं। जैसी मां वैसे बच्चे। आपको कोई कहने नहीं आता। और आप भी मुझ ही पर बरसने लगते हैं। कहते कहते उर्मिला फूट पड़ी।

बबलू की जिद और उद्दण्डता बढ़ती ही गई और उधर पति पत्नी के बीच बबलू को लेकर तकरारें। इसी से पति-पत्नी के बीच एक हल्की सी दीवार बनती जा रही थी। दोनों एक दूसरे से दूर-दूर

खिचे खिचे रहने लगे। उर्मिला ने लाख प्रयत्न किये। बबलू को प्यार से समझाया डांटा धमकाया मारापीटा पर वह पिता की शह पाकर बिगड़ता ही गया। पति के स्नेह से वंचित रह कर उर्मिला घुटी-घुटी, खोई-खोई-सी रहने लगी।

इधर शेखर की कुछ प्रकृति ही ऐसी हो गई कि उर्मिला की हर बात में त्रुटियाँ ही निकालता। बात बे—बात डांट देता। उर्मिला मौन रहती। बस उसकी सहन-शीलता ही बात बनाये हुए थी।

एक दिन तीसरे पहर तीनों चाय पीने बैठे। उर्मिला ने अपना प्याला बना कर केतली शेखर की ओर बढ़ा दी। शेखर ने स्वयं अपने व बबलू के लिए चाय बनाली। बबलू फिर भी खामोश बैठा रहा। चाय-नाश्ते के हाथ तक नहीं लगाया। उर्मिला ने समझा मैंने पहले केतली को हाथ लगा दिया शायद इसी लिये बबलू चाय नहीं पी रहा है। वह बड़े स्नेह और प्यार से बोली— पीलो बेटे चाय।

बबलू फिर भी खामोश बैठा रहा। इस बार उर्मिला जरा तेजी से बोली— पीता क्यों नहीं है चाय ? अब क्या कसर रह गई ?

बिस्कुट और मूंबा मुंह फुलाये बबलू ने शेखर की ओर देखते हुए कहा।

'उर्मिला बिस्कुट और दो इसे' —शेखर प्यार से बबलू के ललाट पर बिखरी लटों को सवारता हुआ बोला।

"क्या ये कई बिस्कुट कम हैं ?" उर्मिला ने व्यंग्य से पूछा।

दो और दे दो तो क्या हो जायगा ? यह कोई खाएगा थोड़े ही। खाली जिद है। शेखर ने समझाते हुए कहा।

खाली जिद है ? तो उसकी जिद क्यों पूरी करते हैं आप ? समझ में नहीं आता उसकी हर जिद पूरी करके उसे जिद्दी क्यों बनाये जा रहे हैं ?

तुम तो ख्वामख्वाह छोटी-छोटी बातों पर बहस करने बैठ जाती हो उर्मिल जैसे तुमने बच्चे पालने का कोई 'डिप्लोमा' पास कर रखा हो।

'डिप्लोमा पास करने की जरूरत मर्दों को है। हम स्त्रियों को नहीं। हम तो ईश्वर के घर से ही सीखी-सिखाई आती हैं। उर्मिल ने धीरे से कहा। बहस करने को उसका मन नहीं था।

निरुत्तर शेखर झट से बोला, अच्छा अच्छा उस बिस्कुट दो। उसकी चाय ठंडी हो रही है।

और बिस्कुट नहीं हैं। खत्म हो गये। अपनी चाय समाप्त कर उठते हुए उर्मिल ने उत्तर दिया।

"उर्मिल मुझे यह बात बिल्कुल पसन्द नहीं है। क्या दो बिस्कुट के पीछे, उसे घंटे भर रुला कर तुम्हारा मन शान्त हो जायगा? उसे रुला-रुला कर खिलाओगी तो क्या अंग लगेगा उसके? शेखर का गुस्सा कुछ बढ़ चुका था उर्मिल को अपने ही काम में व्यस्त और मौन देख शेखर और अधिक झल्ला उठा। "इसे तिल-तिल जलाने से अच्छा है उर्मिल बाहर दे दो इसे। ताकि दूसरी माँ के पेट से जन्म लेकर उस माँ का तो प्यार पा सकेगा यह। कोई सौतेली माँ भी ऐसा व्यवहार नहीं करती। सब बच्चों की अपनी इच्छाएं होती हैं। सब अच्छा खाना और अच्छा पहनना चाहते हैं।

उर्मिल ने वह बिस्कुट वाला काँच का बर्तन सामने लाकर रख दिया। उसमें थोड़ा-सा चूरा था बस।

अब उर्मिल की बारी थी। शेखर चुप था।

उर्मिल अपने चेहरे पर बिखरी लटों को सवांरती हुई बोली 'आपकी तो आदत ही गई है आजकल छोटी-सी बात का बतंगड़ बना देते हैं। बच्चू मेरे भी कुछ लगता है। ऐसी कौन माँ होगी जो अपने

क्रोध से बच्चे के साथ सौत का सा व्यवहार करेगी ? उर्मिला के हृदय में शेखर के ये शब्द चुभ गए थे। उसको एक ठेस-सी लगी कि शेखर ने ज़रा-सी बात के पीछे मुझे इतना हीन समझ लिया। उसका गला भर आया। आँखों से आँसू टपक पड़े। करुण भीगी हुई आवाज़ में उर्मिला बोली— 'शेखर ! तुम्हें क्या मालूम कि इसकी उन्हीं आदतों के कारण मुझे उस दिन मुकेश की बर्थ डे' पार्टी पर कितना लज्जित होना पड़ा था। प्लेट में रखी चीज़ों से तो इसकी तृप्ति ही नहीं होती। खाना शुरू करने से पहले ही 'और लूँगा' की रट लगा दी ! मिसेज़ गुप्ता ने थोड़ी-सी मिठाई और रख दी तो बोला—"बिस्कुट और लूँगा' मिसेज़ शर्मा और मिसेज़ माथुर वगैरह मुँह से रूमाल लगा-लगा कर हँस रही थीं। और जब इसे बिस्कुट मिल गये, तो जैसे घर पर खाता है, वैसे ही सबको चाय में भिगो लिया और कुत्ते की तरह चाटने लगा। इसकी एक भी तो आदत अच्छी डाली हो तो कहूँ। टॉफी की प्लेट भरी रखी थी मुट्ठी भर कर जेब में डाल ली। बहुत कोशिश की पर ज़िद के पक्के बेटे ने बाप की ही नाक रखी।

'उर्मिला' ! शेखर गुस्से में चीखा। सारे दोषों को मुझ पर थोप कर अपने आपको बचाने की कोशिश मत करो। यह क्यों नहीं कहती कि तुम्हें बच्चे पालना ही नहीं आता। और यह सब तुम्हारी ही कमज़ोरी है।

जी' हाँ' सारा दोष उलटे अपने ही पर आते देख उर्मिला को भी गुस्सा आ गया—"यह क्यों नहीं कहते कि यह सब आप ही की सीख का फल है। शायद तुम्हें नहीं होगी याद जब बबलू को यह कहा जाता था—मुँह बनाती हुई उर्मिला बोली—"देखो तो बेटे ! मम्मी अभी तक पापा का खाना क्यों नहीं लाई ? जाओ मम्मी का कान पकड़ कर कहो—कि पापा आ गये हैं, खाना लाओ कभी—'मम्मी ने मारा बेटे ? लो यह झाड़ू तुम भी लगा दो दो चार मम्मी को बबलू मम्मी से पूछो तो हमारे कोट पर बटन क्यों नहीं टांके

मैं कहती सुन गई। तो बबलू को हुक्म मिलता कि— जाओ बेटे हमारी तरफ से तुम सजा दो मम्मी को। चार दफा उठ बैठ करवाओ और उसकी सब जिद को पूरा करवाया जाता। इसी का नतीजा है कि चाहे कहीं भी बैठी होऊं चाहे चार औरतों के पास क्यों न बैठी हों —इसकी बात न मानने पर सटासट मारने बैठ जाता है यह सब किसने सिखाया ? मैंने ?"

अच्छा ! अच्छा ! बकवास बन्द करो। ऐसी खट्टी-मुट्ठी बातें करते और मुझ पर दोष मढ़ते शर्म नहीं आती तुम्हें ? जब देखो तब बच्चे को कोसती रहती हो। माने से कभी कोसा तो मुझ जैसा बुरा नहीं होगा ?

अभी ही कौन कुछ अच्छाई हो रही है। जिन्दगी कलह बन गई है। जीना तो अभी ही दूभर हो गया है। अब और क्या होना बाकी है ? आंखों से टपाटप आंसु गिराती हुई बोली उर्मिल 'ऊपर से हर बादाम की गुली सफेद और मधुर दिखाई देती है, पर किस गुली का अन्दर जहर सा कड़ुवा निकल जायेगा कौन जाने ? यही हाल मर्दों का है ऊपर से सब सफेद और भोले दीखते हैं पर किसका हृदय कड़ुवा जहर पीड़ा और क्रोध के आवेश में उर्मिल सिसकते हुए कहे जा रही थी।

"उर्मिल ! " शेखर गुस्से में चिल्ला उठा। पत्नी का इतना तीखा आक्षेप शेखर नहीं सह सका। ' तुम्हें अगर मेरे साथ रहने में दिक्कत है तुम सुखी नहीं हो तो जा सकती हो आज ही ! अभी। 'शेखर क्रोध से कांपता हुआ बोला।

उर्मिल की भी सहन-शक्ति जवाब दे गई वह तड़प उठी। 'अगर यों ही घर से निकालना था तो पल्ले बांध कर क्यों लाये थे पहले ? क्यों हाथ पकड़ा था मेरा ? अपने साथ निबाह नहीं सकते तो पर बात अधूरी ही रह गई। और और गुस्से में पागल शेखर का हाथ उठ गया। चली जाओ यहां से !'

"बहुत अच्छा ! सिसकियाँ भरती चोट लगे गाल को सहलाती हुई उर्मिल सिहरती हुई दूसरे कमरे में चल दी ।

उर्मिल को अपनी बहन के यहाँ आये छः सात दिन हो गये थे पर जिस दिन से वह पीहर व पति से अलग हुई है एक दिन भी शान्त नहीं रह सकी । कहने को तो कोई दुख न था । खाने-पीने उठने-बैठने का सब सुख था । पर उर्मिल की आत्मा तो जैसे भटक रही थी अभी कुछ सूना-सा लगता उसे । प्रयत्न करने पर भी वह अपनी बहन के बच्चों से भी नहीं बहला सकी । शाम कर सिमट कर वह एकान्त की ही टोह में रहती और अपने अतीत के सुखद दिनों की स्मृति में आँसू बहाया करती ।

और सोचती रहती—मुझे उनके कहे का इतना गुस्सा नहीं करना चाहिए था । मैं क्यों चली आई यहाँ ? अच्छा नहीं किया मैंने अपना घर छोड़ कर । मैंने स्वयं अपनी बदनामी और कमजोरी दुनिया को जाहिर कर दी । पर सारी गलती मेरी अपनी ही तो नहीं है । विचार करवट बदलते—उन्हें भी मुझे इस तरह नहीं कहना चाहिए था । और अगर मैं रूठ कर, गुस्से में सोचे-समझे बिना आ ही रही थी तो क्या वे रोक नहीं सकते थे ? मना नहीं सकते थे ? उर्मिला सोचती रहती—उनमें अहंकार ने घर कर रखा है । लेकिन मैं भी तो घर छोड़कर चली आई । क्या यह अहंकार नहीं ? कभी वह सम्पूर्णतः अपने आपको दोषी मान लेती तो कभी मन करवटें लेने लगता पर चैन कहाँ ।

फिर सोचती मेरा कुसूर इतना हो तो था कि मैं उन्हें बेवकूफ की तरह तड़ाक जवाब देती रही । और घर छोड़ कर चली आई । अधिक कुसूर तो उन्हीं का है । वे क्यों बात-बे-बात मुझे डाँट देते । मेरे हर काम में मीन-मेख निकालते । बच्चों व घर की देख भाल का काम और उत्तरदायित्व हम स्त्रियों का है मरदों का नहीं ।

सारी-सारी रात एक के बाद एक, इसी तरह कई विचार आते रहे

और उर्मिल तड़पती रही। शेखर का समस्त प्रेम और विवाह के बाद सुखद वर्षों की याद आते ही उसका मन घुटने लगता। प्रश्न उठने लगते—क्या अब उन्हें मुझसे प्रेम नहीं रहा? क्या मैं सचमुच उनके लायक नहीं रही? "वे मुझे मनाने क्यों नहीं आये? वैसे तो जीजी और जीजाजी से मिलने हर दूसरे तीसरे दिन चले आते थे। पर मुझे आये आठ दिन हो गये एक बार भी नहीं आये। क्या बबलू को भी मेरी याद नहीं आई? "वह भी भूल गया" और ऐसे ही विचारों में उर्मिल खोई रहती। इसी तरह रात बीत जाती सवेरा हो जाता।

एक दिन—उर्मिल को डाक से एक पत्र मिला। शंका आशंका और कौतूहल के बीच धड़कते हृदय से जल्दी पत्र खोला कांपते हुए मन से वह पढ़ गई—

प्रिय उर्मिल

जिस दिन से तुम गई हो मैं परेशान हूँ—बबलू के मारे! वह कई चीजें तोड़ फोड़ चुका है। तुम गई, उसके दूसरे दिन बोला—"पापा मम्मी कहां गई है? कब आयेगी मम्मी ?

"मम्मी नहीं आयेगी अब! मैंने डांटते हुए कहा।

"क्यों नहीं आएगी पापा ?" बबलू ने सूरत बिगाड़ते हुए पूछा—मेरे मुंह में रोटी का कौर था। मैं बोल नहीं पाया। तो अपने नन्हें नन्हें हाथों से मेरा मुंह अपनी ओर मोड़ते हुए बोला—"बताओ पापा मम्मी कहां गई है? क्यों गई है?

"इसलिए कि तुम मम्मी का कहना नहीं मानते। उसे परेशान करते हो। जिद करते हो। बुरे लड़के हो। मम्मी को मारते हो।

बबलू चुप रहा। पर उदास हो गया।

फिर एक-दो बार जिद की उसने तो मैंने कहा—"बस! ऐसे जिद करोगे तो मम्मी कभी नहीं आयेगी। मैं आज तुम्हारी मम्मी से

जाकर कह दूँगा—कि बबलू अभी भी जिद करता है बुरा लड़का है।"

"कहाँ है मम्मी ? मुझे भी ले चलो पापा ? बबलू रूंधे गले से बोला। उसकी आँखें भर आई थीं। मैंने कह दिया—नहीं मम्मी तुमसे नहीं मिलेगी। मम्मी जिद्दी बेटे को नहीं रखना चाहती। वह अपने लिए छोटा-सा अच्छा बबलू लेने गई है। उसे रखेगी।

तो एक दम रो पड़ा बबलू। "नहीं पापा दूसरा बबलू मत लाओ। मम्मी के पास ले चलो पापा। मैं मम्मी का कहना मान लूँगा पापा। मम्मी को बुलाओ। और मेरे चिपट कर रोने लगा।

सच कहूँ उर्मिल मेरी भी आँखें भर आईं। तुम्हारे बिना बबलू ही दुखी नहीं हुआ मेरा भी सब कुछ सूना और अस्तव्यस्त हो गया है।

तुम अभी आओ उर्मिल। हम दोनों अपने किए की क्षमा मांग लेते हैं। बबलू भी अब जिद नहीं करेगा सच कहता हूँ।

बबलू ने एक दिन गुस्से में आकर फूलदान मेरे सिर पर दे मारा था। पट्टियां बंधी हुई हैं। इसीलिए स्वयं न आकर अपने पत्र दूत को भेजा है। चली आओ मेरी उर्मिल। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा हूँ। तुम्हें बबलू की सौगन्ध है उर्मिल—अभी आओ आज ही अभी।

तुम्हारा—शेखर

और उर्मिल का सारा मान क्षण भर में बह गया

१४

● मंगल सक्सेना

तीन कोनों वाला मन

अभी-अभी उसके राजन भैया गये थे। वाणी सोचती है राजन भैया कैसे बोलते हैं। उनके जाने के बाद भी बहुत देर तक उनके शब्द कमरे में गूंजते रहते हैं।

वाणी कहती है—मनमें—राजन भैया कैसे धीरे से कमरे में आते हैं। मां से दादी से प्रणाम करते हैं कमरे के बीचोबीच मुढ़ा खिसकाकर बैठते हैं फिर अचानक खड़े हो जाते हैं। फिर एक-एक कदम पर जोर देते हुए घुटनों को कुछ मोड़कर झुकते हुए, मुस्कराती आंखों को चमकाता-सा नजरें मां और दादी पर डाल कर दीवार पर टंगे कैलेण्डर की ओर बढ़ जाते हैं फिर गौर से बड़े-बड़े हरफों को भी ऐसे देखकर जैसे चींटियों से हों जोर से पढ़कर कहते हैं—ओ हो आज अमुक तारीख है! मैं तो भूल ही गया था।

राजन भैया के जाने के बाद भी जाने क्यों लगता है जैसे वह अभी-अभी अपनी उसी अलमस्त स्टाइल में मूढ़े से उठकर कैलेण्डर की ओर बढ़ रहे हैं बढ़ रहे हैं बस्। आते हैं बोलते हैं कहती जा रही हूं [illegible] मैं कितनी बुरी हूं ईडियट। वे आते हैं बोलते हैं, चलते हैं। और इसी तरह वाणी सोचती ही चली जा रही थी। मन ही मन अपने से वार्तालाप करती ही जा रही थी। मगर जाने क्यों बार-बार उसकी नजरें ताक में रखे भगवान जी के चित्र पर अटक जाती थी। रोज सायं मां या दादी या वह इन भगवान जी की आरती करती है। मगर जाने क्यों आज वह उन्हें एकटक देखती ही चली जा रही थी जैसे वे अपरिचित हों कि उसे आश्चर्य है कि इतने दिन बाद उसे यह कैसे पता चला।

अभी अभी राजन भैया आये थे और कह रहे थे "हाँ माँ म, है राजन भैया देखता आपको हूँ। आजकल के ज़माने में ऐसा ल, लाखों में मिलना मुश्किल है लाखों में क्या करोड़ों में ह वाणी ने इस तरह से मुँह बनाया कि कोई देख लेता तो समझता उसे चिढ़ा रही है। माँ कहती हैं नाना जी कहते थे उन्होंने ए वर्ष की हेडमास्टरी में कभी ऐसा लड़का नहीं देखा था। एक की बात है तो बतलाती हूँ तब मैं छः साल की थी, नन्ही-सी गुड़ि सी। है हूँ माँ तो अभी भी मुझे गुड़िया ही कहती है। मगर भी तो दूसरे लोगों के सामने कितनी लाज लगती है। अपने रा भैया के सामने भी कितनी शर्म आती है। माँ कितना कहती हैं तब पानी का गिलास उनके सामने लाकर क्यों नहीं दे आती। बस कुरसी दरवाजे के पास पड़ी तिपाई पर रखकर भाग आती हूँ और कभी बाहर खिड़की की आड़ में खड़ी सुनती रहती हूँ राजन भैया मजेदार बातें। राजन भैया बोलते कैसे हैं! बोलते-बोलते ही जोश आकर हाथ-पाँव चलाने लगते हैं जैसे भी हो जाते हैं कभी-कभी मैच के मैदान में खड़े हों। हमारे राजन भैया कालिज के बेस्ट खिलाड़ि में हैं। आलराउण्ड चैम्पियन। हाँ सभी टीमों में उनका नाम आता है। माँ कहती हैं राजन भैया स्कूल के दिनों से ही खे खेलते हैं "उन दिनों जब माँ नानीजी के यहाँ गयी थी मैं तब छः की थी राजन भैया आठवीं में पढ़ते थे। हम लोग मिलकर गये थे और दो गुण्डों ने माँ और मौसी को छेड़ दिया था। गुण्डे नाना जी से भी धौंसजोरी की थी "दूसरे दिन राजन भैया को लगा था तो उन्होंने पता मालूम किया कि गुण्डे कौन थे। और दो गुण्डों को पकड़ कर लाये थे नानाजी के पास। उनसे और माँ से से माफी माँगी थी उन गुण्डों ने। कैसी पिटाई की थी राजन भैया उनकी।

अपने आप ही वाणी की मुट्ठियाँ बँध गयी थीं। वह इधर-उ नजर कर बैठी थी। फिर भी बरबस उसकी नजर मधुबाला की पर अटकती थी वह अपने में कोई सोचती जा रही थी।

अभी-अभी राजन भैया आये थे। हफ्ते में दो बार वे जरूर आते हैं हमारे यहां। देखो यह भी 'भाग्य' ही है कि वो इसी नगर में एम० एस०सी० कर रहे हैं। पिछले तीन वर्षों में उन्होंने कितनी मदद की है हमारी। दादी कहती हैं ऐसा निःस्वार्थी और त्यागी लड़का उन्होंने कभी नहीं देखा। औरतों की ओर तो कभी नजर उठाकर गौर से देखता ही नहीं। बातें करता रहेगा खूब खूब मजेदार मगर आंखें दीवार पर या पांवों पर ही अटकी रहेंगी। कभी मुहल्ले की भी कोई बहू-बेटी बैठी होगी तो वह बड़े अदब से मौन आकर बैठ जायगा। बोलने के लिए मजबूर करोगे कोई चर्चा छेड़ोगे तो बोलना शुरू कर देगा। परन्तु उस तरफ भूल से भी नहीं ताकेगा जिधर वह लड़की बैठी होगी।

दादी कहती हैं, जब से पिताजी का स्वर्गवास हुआ है किसी पुरुष का सहारा ही नहीं रहा है हमें। बाहर का काम कोई देख ही नहीं पाता। मां भी क्या देखे! कितना देखे! चाचाजी बाहर रहते हैं कमाते हैं। घर खर्च के लिए कुछ रुपया भेजते हैं। पिताजी को गुजरे कितने साल हो गये चार साल हो गये चार साल हो गये मैं जब दस साल की थी। अभी भी याद है मुझे पिताजी की बीमार अवस्था।

मां ने कितने कष्ट उठाये हैं इन पिछले सात-आठ वर्षों में। तीन वर्ष तक तो पिताजी ही बीमार रहे।

और एकाएक ही वाणी का हृदय मां के लिए करुणा से भर आया। पिताजी की याद आते ही वह कुछ उदासी हो गयी। पर मां के संकल्प और साहस की याद ने उसे आंसू भी आने नहीं दिए कुछ पल को। वह सम्पूर्णतः खो गयी। वह भूल गयी कि वह क्या सोच रही थी अंधेरी गलियों में रास्ता भूले मुसाफिर की तरह मन-ही-मन उस विचार का सूत्र टटोलती रही थी जो अभी-अभी सोचते-सोचते उससे छूट गया था। जो वह सोच रही थी वह उसे शान्ति दे रहा

था तृप्ति दे रहा था' 'यह विचार फिर से दुहराना चाहती थी वह कल्पना का आनन्द ले रही थी। उसे मम्मी जल्दी घर आना चाह रही थी वह।

हाँ, आज भाभी ...और यह आज उसे भगवान का चित्र देखकर आयी कि वह राजन भैया की बातें सोच रही थी ...हाँ राजन भैया एक दिन अचानक बाजार में मिल गये थे। वो यहाँ होस्टल में रहते हैं ...। किसी तरह समय निकालकर हमसे मिल जाते हैं। बाजार का सारा काम करते हैं। माँ के लिए चाहे जहाँ कहाँ से कपड़े सीने के लिए ले आते हैं। झाड़ू-बरतने का काम ले जाते हैं। कहते हैं हाथ का कोई काम बुरा नहीं। बुरा है निठल्ला रहना और दूसरे की कमाई खाना। वे तो मुझे भी पढ़ाकर नौकरी करवाने की कहते हैं। पहले तो दादी जी ऐसी बात हरगिज पसन्द नहीं करती पर राजन भैया की तीन वर्षों की लगातार सेवा देखकर वे उनकी बात टालने की हिम्मत नहीं जुटा पाती हैं। उलटे यही कहती हैं "राजन कहता है तो जरूर कोई अच्छी बात होगी ... अब हमारे बूढ़े दिमाग में क्या समझ आये है। तू भी समझे सो कर बेटा ...। मैं क्या कहूँ तुझे। अब यह जमाना ही ऐसा है उस पर किस्मत भी ऐसी लिखाकर लाये हैं ...। जवान बेटा आँखों के सामने से चला गया" ...। और दादी पिताजी की याद करके रोने लगती हैं — ...। मुझे दादी को देखकर भी बड़ी दया आती है। अगर मेरे पास सचमुच कोई जादू की छड़ी हो तो मैं फ़ौरन 'छू'...राजन भैया को पिता जी बना दूँ ...! दादी कितनी खुश हो! ...धत् ...राजन भैया को पिता जी? नहीं ...राजन भैया को तो राजन भैया ही रहने दूँ। नहीं तो उनके जैसा आदमी कहाँ से आयेगा? मैं तो इस भगवान को ही पिता जी बना दूँ हाँ' ...।

राजन भैया अभी-अभी आये थे। अभी-अभी गये हैं। कह रहे थे— अरे पगली कितना घबराती है न दादी मैं उसे देखना ही 'मदर-इंडिया' बनाऊँगा। अभी क्या है? अभी तो यह आठवीं में ही पढ़ती है न।

देखना इसके मैट्रिक करते ही ट्यूशन करवाना शुरू कर दूंगा । करा कराई की काम । फिर पढ़ो । फिर पढ़ो अब यह जमाना आ गया है जब औरतों को अपने पाँवों पर खड़ा होना चाहिए । 'अब देखो दादी" राजन भैया धीमी आवाज में दादी का जैसे पूरे आत्म विश्वास से समझाते हुए कहते हैं, अब अगर दीदी (जो माँ को दीदी कहते हैं) मैट्रिक पास की हुई होतीं तो कोई तकलीफ होती घर में ? किसी का आश्रित होना पड़ता ? अब चाहे आपके रुपये बैंक हैं मगर दीदी तो देवर के आश्रित ही हैं न ? बार-बार कितनी हिदायतें सुननी पड़ती हैं यह खर्चा मत करो बहुत खर्चा हो गया है चाची को घर पर ही सीना-पिरोना सिखाओ और बस—क्यों पढ़ाते हो स्कूल में ? पढ़ाई का खर्च अधिक बैठता है । इस बार हमारे खर्चा ज्यादा हो गया इसलिए कम ही भेज रहे हैं मगर तुम्हारे लिए अधिक ही पड़ेगा' आदि-आदि । दादी बताया यह सब सुनना पड़ता है आपको और दीदी को । दादी कम से कम मैट्रिक पास तो लड़की को होना ही चाहिए । है न ? खुद कमा खा तो सके । वरना आप चाहें मैं चाची को बहुत बड़ी अफसर बनवा दूँगा नहीं तो प्रोफेसर हो ।

और राजन भैया मेरे बारे में कह जा रहे थे और मैं हूँ कि कभी तीन वर्षों में पूरी तरह सामने भी नहीं पड़ी हूँ राजन भैया के । माँ और दादी कितना डाँटती हैं—'घर का ही लड़का है राजन तो । मैं कब कहती हूँ पराया है । मगर नहीं होता है मुझसे उनका सामना । बड़ों का आदर करना चाहिए । पर मुझे लाज भी लगती है डर भी लगता है कहीं राजन भैया मेरे फूहड़पने पर टोक न दें वे सब को टोक देते हैं ।

लेकिन एक बात है चाची ने इस बार भगवानजी के चित्र वाले ताक के दोनों ओर हाथ टेककर चित्र को एक टक देखना शुरू कर दिया । वह सोचे जा रही थी कि इस तरह जैसे चित्र से ही पूछ रही हो क्या बात है कि राजन भैया ने कभी मुझ से अपने सामने नहीं

रहने या बातचीत करने को नहीं कहा ? कभी मुझे गौर से देखा भी नहीं ? यूँ तो वो मेरे लिए इतने बड़े-बड़े प्लान बनाते हैं मगर मुझे मेरे हाव-भाव पहनना-संवरना कुछ भी नहीं देखते हैं। बस कमरे में उन्हें जैसे दीवारें कैलेण्डर दादी या माँ के पाँवों के बिछुवे, यही दिखलाई देते हैं। और बातें ढेर सारी करते हैं—काम की, बेकाम की। अजीब-अजीब सपनों की। प्लानों की। अपने पेशों की। इनामों की। ट्राफियों की। कलियों में मार-पिटाई की। ये कर दिया हमने वो कर दिया हमने हुह। क्या खाक कर दिया। मुझे एक दिन भी पढ़ाकर तो आया नहीं। दादी ने कितना कहा। मुझ से बस यह काम नहीं होता, दादी ! मुझ से तो खिलवा लो। मैदान में उसके छक्के छुड़ा दूँ या। पढ़ना-पढ़ाना नहीं होता। और फिर आपी तो खुद मुझ से इतना शरमाती है कि उसे सामने देखकर मैं भी शरमाने लगता हूँ दादी सच। अब बताओ भगवान् मुझ से राजन भैया शरमाये यह नहीं हो सकता है ? यह शोभ से भी हो सकता है ! झूठ है न ? राजन भैया जरूर बहुत गप्पें मारते होंगे। गप्पी कहीं के ! अरे यह इतनी देर से भगवान् के चित्र में राजन भैया की तस्वीर क्यों दिखती है ? हाँ और मुझे बार बार लगता है जैसे यह राजन भैया की तस्वीर है। धत् तेरे की !

अच्छा अब की बार राजन भैया आयेंगे तो मैं बिल्कुल नहीं शरमाऊँगी। अल्ट्रा-मॉडर्न बनने का ऐलान कर दिया है तो मैं भी बॉब और 'फारवर्ड' लड़की बनकर दिखाऊँगी जैसी हमारे कालेज की बहुत सी लड़कियाँ हैं जो लड़कों को भी उल्लू बना देती हैं। मैं भी अब उनके-से बाल कटाकर जाया करूँगी कॉलेज। उनके-से कपड़े पहनूँगी। उनकी तरह बोलूँगी। अब की आने दो राजन भैया को। बढ़कर मैं हाथ दूँगी मैं उन्हें। "आपी आपी" माँ की आवाज आयी— 'आपी आरती का समय टल रहा है बेटा। भगवानजी की आरती कर लो। अरे सचमुच शाम ढलने को आयी। आरती हो चुकनी चाहिए थी। वह तो भूल ही गयी थी।

उसने हाथ धोये और बड़े मनोवेग से आरती की। आज उसे रह रहकर भगवान के चित्र में राजन भैया दिख रहे हैं और साथ ही खिड़की की आड़ में खड़ी कुछ सी। जो अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से राजन भैया को जाते हुए देख रही है। आज उसने आरती मन लगाकर गायी। उसे बहुत अच्छा लगा। मन ही मन उसने प्रतिज्ञा की इस बार वह राजन भैया के सामने ऐसी आयेगी कि उनका मुंह खुला का खुला रह जायेगा।

वाणी अभी-अभी कॉलिज से लौटी है। आज वह बहुत उमंग में है। वह कुरती से अपनी किताबें अपने पलंग पर पटक देती है और भगवान के चित्र के सामने खड़ी होती है। एकटक उस चित्र में झांकती जाती है और मुसकराती जाती है। कुछ पलकों गम्भीर होती है मगर आँखों से ज्योति-सी बरसती लगती है। फिर एकाएक मुसकराने लगती है। कभी नन्हें पतले होंठ हंसते हैं तो कभी बड़ी-बड़ी नाजभरी आँखें। लगता है जैसे भगवान् का चित्र भी वाणी को देख-देखकर मुसकरा रहा है। वाणी ने एक-दो बार मुंह चिढ़ाकर भी तसवीर की ओर देखा है जैसे बतलाना चाह रही हो कि देखना मैं तुम्हें चौकाकर इस चित्र के फ्रेम से बाहर न ले आऊं तो वाणी नाम नहीं।

मुंह चिढ़ाते हुए याद आती है अपनी स्कूल की सहपाठिनी रीतू-का कहना—"भई हम तो मौसम के साथ बदलते हैं। हम तो मनहूस नहीं रह सकते।" बड़ी जानी मौसम के साथ बदलने वाली चंचल तितली कहीं की। पर लगती प्यारी है। जिन्दादिल। जब तक साथ रहो हंसाती रहेगी। खुद भी खिलखिलाती रहेगी, आपको भी पुलकों से भर देगी। अनायास ही आप दांत दिखाने लग जायगे। उस उसके साथ रहकर तो कोई मनहूस रह ही नहीं सकता। है भी कमबख्त सुन्दर। हाय कितनी सुन्दर है। और रहती भी है मस्ट्रा-मॉडर्न फैशन में। भई, घराना ही ऐसा पसार है। बाप पुराने आई सी एस अफसर। माँ रिटायर्ड प्रिन्सिपल डिग्री कॉलिज की। भाई विलायत में पढ़ते हैं। बहन भी विवाह करके अमरीका घूमने गयी हुई है। खुद

हो मुझे माफ करो। जो कहना हो खुलकर कहो। जो छुपकर करती हूँ वही हूँ जो पाप करती हूँ। खुलकर जी खोलकर रहेंगे तो समाज भी जितना बर्दाश्त कर सकता है उतना करेगा बाकी के लिए हमें अपने आप पता लग जायेगा कि यह अनुचित है। अरे हमें तो निर्मला बहनजी की फिलासफी पसन्द आती है।

आगे और बोली रीनू 'और एक डायलॉग बोलती है—मन में छोटे-छोटे टुकड़े-टुकड़े करके मत बनाओ। मन तो आँगन है या खुला आकाश खुलकर सोचो और जो करो जो मन कहे। यह नहीं कि मनका एक कोना कहे कुछ व एक कोने से आवाज उठे दूसरी। और आप दोनों की कशमकश में चौपट हो जायें ।

वाणी को ये सारी बातें याद हैं, ये सब डायलॉग भी यह रामन भैया को सुनाना चाहती है, उससे उनकी राय माँगना चाहती है। वह चाहती है, कोई उसके साथ इन विचारों पर बहस करे। जैसे उसके मन में कहीं यह भी छुपा है कि कोई इन विचारों को बेरहमी से काट दे तो उसे मजा आये उससे ज्यादा जो उसने इन लड़कियों की सम्मति से पाया है। वह जब सीमा की ही साइकिल पर बैठ कर घर को आ रही थी (उसके भी मन में आज 'बस' के बिना घर लौटने की चाह नहीं थी) तब भी वह यही सोच रही थी। उसे लगता था जैसे कुछ तेजी से बदल रहा है। कोई परिवर्तन है जो उसके मन चाहे हो रहा है और अनायास उसमें ढल रही है जिसमें ढलना चाहते हुए भी नहीं चाहती।

कभी उसके मस्तिष्क में समाजशास्त्र की बहनजी का वाक्य गूँजता है— संस्कृति का कोई मूल्य जब जड़ हो जाता है और समाज बदल रहा होता है तो व्यक्ति को बहुत सतर्क रहना चाहिए अन्यथा वह टूट जायेगा । उसको इस वाक्य का पूरा अर्थ समझ में नहीं आता। तभी उसके दिमाग में साहित्य की बहनजी का वाक्य गूँजने लगता— 'भारतीय संस्कृति हमारी प्राचीन संस्कृति है विश्व की सिरमौर है वह आदर्श है आज के भटके हुए समाजों को यही शान्ति दे सकती है।

इसका भी पूरा मर्म वह नहीं जानती। भारतीय संस्कृति क्या है? वह तो बस माँ को जानती है दादी को जानती है, दिवंगत बिमार पिता के मलिन चेहरे को याद करती है माँ के संघर्ष को जानती है चाचा की दया को अनुकम्पा को और उनकी कड़ुवाहट को, तभी को मन से विमुख बस मर्यादा निभाने वाली उनकी मजबूरी को जानती है हाँ राजन भैया को भी जानती है। और किसे जानती है? कुछ भी तो नहीं। कितना नन्हा है उसका संसार। कितना नन्हा है उसका दिल। वह सोचती है राजन भैया से वह बहस करे। उनसे इन नये नये विचारों पर निर्णय माँगे मगर राजन भया है कि उसकी ओर देखते भी नहीं गाते हैं बड़े राम लक्ष्मण ज्ञ अवतार। हाँ तो वाणी भगवान की याद में झुक जाती है ठोड़ी टिकाये जाने कहाँ खो जाती है तभी माँ टोकती है— आरती का समय था क्या है' 'वाणी स्वेत' कई दिनों से किस मनोयोग से आरती कर रही है उसी श्रद्धा-पूजा के भाव से भाव भी करती है।

वाणी रास्ते भर अपनी रुलाई रोके रही।

घर में घुसते ही वह सबसे पहले अपने कमरे में पोथी किताबें फेंकी और पलंग पर तकिये में मुँह गड़ाकर फफक-फफक-कर रो पड़ी।

रो पड़ी जोर जोर से 'उसकी इच्छा हो रही थी सीता फफ कर रोये' मना फफककर रोये' यह तकिया यह बिस्तर यह कमरा यह प्रकाश फफककर रोये' । वह जोर से रोई और माँ रसोई से भाग कर आयी। दादी चर्खा छोड़कर, ठसकती हुई, फुरती से आयी। क्या हुआ? क्या हुआ बिटिया 'क्यों रो रही है? किसी ने कुछ कह दिया कॉलेज में। कुछ बता तो? बहुत पूछा। दोनों ने पूछा मगर उसने नहीं बताया। बस रोती रही धीरे धीरे। मगर कुछ नहीं बताया। माँ दादी पूछ-पूछ कर हार गयी और वह नहीं हारी। उसने रोने का कारण नहीं बताया। हताश होकर दादी उठ गयी, माँ भी उठ गयी। दोनों कह गयीं अच्छा अपने राजन भैया को ही आने दे वे ही पूछेंगे। तु

रह रही थी न कि राजन भैया के सामने बिल्कुल नहीं शरमाऊंगी देखती हूं उनके पूछने पर कैसे नहीं बताऊंगी रोने का कारण।

और वह रोते रोते चुप हो गयी। बस रह-रह कर हिचकियां आ जातीं पता भर आता। आंसू की लड़ी ढुलक पड़ती।

और वह एकटक भगवानजी के चित्र को देखती जा रही थी देखती जा रही थी। एकाएक जाने क्या हुआ कि वह उठी और उस चित्र को उठा कर उसने दरवाजे के बाहर गली में फेंक दिया।

'क्या करती है ? क्या करती है बावली ? पागल हो गयी है क्या ? तेरा दिमाग तो नहीं खराब हो गया ?' कहती हुई मां उसके हाथ से चित्र लेने के लिए झपटी।

वह तो चित्र फेंक कर दौड़ी और फिर अपने कमरे में अपने पलंग पर आ गिरी। उसके कानों में कुछ शब्द, कुछ फिकरे, अंगारों की तरह जल रहे थे। उनकी गूंज जैसे उबलते हुए पारे की तरह नस-नस को नसोंको जला रही थी—वे शब्द उसने अभी-अभी सुने थे जब वह अपनी सहेलियों के साथ बाजार से आ रही थी। बाजार में राजन भैया भी बोले थे उफ कैसे हैं राजन भैया जो उसके भगवान थे। तभी लगा मानों बाहर राजन भैया बोल रहे हैं मां कुछ कह रही हैं।'' मां घबराई हुई है। राजन भैया कुछ कह रहे हैं शायद उसे आवाज दे रहे हैं। वह नहीं जाती है वह उठकर जोर से दरवाजा बन्द कर देती है।



●हरीश भादानी

अनाम अपने

ओ मेरे अनाम अपने,

तुम्हारे नाम पत्र लिखना उसे कई बार पढ़ना फिर सूटकेस की सुरक्षित जेब में रख देना मेरी आदत हो गई है। अब तक कितने ही पत्र लिख चुकी हूँ पर कभी नहीं चाहा कि मेरे पत्र तुम तक पहुँचें। मन पर छाए भावों के बोझ को उतार दूं, एकाकीपन की टीस को शब्दों में उतार दूं तुम्हें छू आऊं। पर कमरे के बाहर फैलती हुई सांझ खिड़की से झांक कर टोक जाती है और मैं विवश फिर सूटकेस की ओर बढ़ जाती हूं। आंगन से आता हुआ कोलाहल शब्दों को पढ़ना भुला देता है इस तरह हर नया पत्र अनपढ़ा ही कैद हो जाता है किसी कर्कश आवाज को पहरे से बचाने के लिए।

मैं दिन भर मेरे चिट्टू-नन्हे बच्चों से बातें करती जाती हूं उन्हें क्या बहलाऊंगी मैं स्वयं उनसे बहलती हूं। चार बजते-बजते ये बीते टा-टा-टा के शोर के साथ मुझसे विदा ले लेते हैं। मैं न चाहते हुए भी अपने ऊंची-दीवारों वाले घर लौट आती हूं। हमेशा खुली रहने वाली मेरे कमरे की खिड़की मुझ थकी-हारी को सहारा देती है और मैं खिड़की के सामने खड़े ठूंठ को तब तक निहारती रहती हूं जब तक शाम के लिए पराए ये स्वर मुझे झकझोर नहीं देते।

अभी-अभी अपने बच्चों के बीच से लौटी हूं। खिड़की पर कुहनियां टिकाए सूखे ठूंठ को निहार रही हूं। यह ठूंठ ठीक तुम जैसा ही है न अभी शाखें हैं न पत्तियां हैं, निपट अकेला अबोला खड़ा है। सरकते समय के साथ कई मौसम आते हैं दो घड़ी रुकते हैं चल देते हैं। किसी सावन एक हरी कोंपल फूट आई तो फूट आई वैसे सदा एक-सा।

देखती तो इस ठूंठ को हूं पर सामने तुम आ जाते हो, इतने धँस जाते हो कि आँखों की सारी सीमाएं भर जाती हैं। मैं देखती हूं—तुम अभी होटल में हो, सुर्ख चेहरा, मुट्ठियां बंधी हुई, ऐसे उलझे हो कि मेरे संकेत भी नहीं देखते। मैं कहती हूं—इस तरह बहस मत किया करो पर तुम हो कि एक प्रयोगवाद-प्रगतिवादी कविता यह है, वह है और कुछ भी नहीं।

यह लो आ गए ना। अपनी ताबूतनुमा कोठरी में। कहाँ गए वे दोस्त, कहाँ वो गया वह प्रगतिवाद? पथरीली खाट पर चित लेटे ये आँखें फैलाए, मैं तो कांप जाती हूं। बताओ न किसे ढूंढती हैं ये आँखें, कौन है जो इतनी खोज के बाद भी नहीं मिल रहा है।

मेरी कुहनियां दुखने लगी हैं। निढाल सी खाट पर आ पड़ती हूं। मैंने क्या बिगाड़ा है इस निगोड़ी नींद का जो मुझसे सदा कतराई रहती है। नींद की मनौती करते-करते आँखें मींच कर ज्योंही करवट बदलती हूं कि तुम मुंह-ढांपे सुबकियां भरते दिख जाते हो। बंद चार दीवारी और अकेले तुम कौन देखेगा तुम्हें ऐसे रोते? मैं क्या जानूं कि मुंह ढांप कर रोने से सारे दुःख पिघल जाते हैं, रिस जाते हैं। मैं तो ऐसे रो भी नहीं सकती—मेरे चारों ओर तो हर समय एक भीड़ रहती है जो मुझे एक ही रास्ते के दो बिन्दुओं पर नाचती-दौड़ाती रहती है। इन दो बिन्दुओं से बाहर की ओर झांकना पाप है। इस छोटे से रास्ते की सीमा के भीतर चलना मेरा धर्म है, मेरी दाम्पत्य है, मेरा जीवन है।

मेरे अनाम साथी! यह ठूंठ एक पोस्टर है जिस पर तुम खिंचे हुए हो—अपने अस्तित्व अपने प्यार सहित। और मैं पढ़ा करती हूं, पढ़ती चली जाती हूं कि नीचे से खाना बनाने का तकाजा मुझे तुम्हारे इस पोस्टर के सामने से खींच ले जाता है। मैं रोटियां सेंकती हूं—गोल-गोल। सोंधी गंध वाली सब्जी और थाली पर झुके हुए दो-चार रूखे काले चेहरे। इन चेहरों में से एक चेहरा अखबार के दफ्तर में

टेबल पर झुके हुए तुम हो जाता है जो आटे की बोरियों के लिए मचलती मक्खियों सी पेट की छटपटाहट के बिना याद करता है जो आंगन में पड़ी नन्ही आशा को ढांपने के लिए कफ़न जुटाने की योजना बनाता है। यह तुम्हारा चेहरा ताजा लिखी किताब बेचने से मिले रुपयों और इन रुपयों से आने वाले चना के तोल का और अपनी भूख की खाई का अनुपात मिला रहा है।

चूल्हे की आग बहुत तेज है। बैठना मुश्किल हो गया है नहा गई हूँ पसीने से। अब बुझाने पानी की तपेली उठाती हूँ कि सुलगती लकड़ी की आग में तुम सामने चले आते हो। तुम चलते कहाँ हो? तुम अपने का ऐसे ढो रहे हो जैसे हर पर पीठ पर भारी बोझ रख दिया हो किसी ने!

अपने सपनों से दुःखी अपने अभावों से दुःखी मेरे अनाम अपने! चाहती हूँ तुम्हारा बोझ बांट लूँ तेरी दुखती पोरों को सहला दूँ बीमार में पड़ी पथरीली खाट के सिरहाने पड़े तेरे रूखे बालों को अपनी अंगुलियों से संवार दूँ, धूप से जली कोलतार की सड़क पर न सही किसी एक सपने में ही आकर तुम्हें अपने साथ का विश्वास दिला दूँ और आग अपने आप बुझ जाती है।

अंधेरा घर और मुझे घेर कर खड़ी-सी जोड़ी हुई यह भीड़ जिसका कड़ा पहरा मुझे देहरी लांघने से रोक सकता है मगर आंगन से नहीं आंखें मूंद मन ही मन तुमसे बतियाने से नहीं।

तार-तार हुई अपनी अभिलाषाओं पर कविताई-आस्था के पैबन्द लगाकर जीने वाले ओ मेरे अकेले साथी! मुझसे कभी मत मिलना मुझे अपना एक क्षण भी मत देना। मुझ में इतना बल नहीं कि सीमाएं लांघ कर तुम तक आ जाऊं वह तन कहाँ से लाऊं कि तुम जितनी धूप ओढ़ सकूं वह मन कहाँ है मेरा कि सब कुछ खो दूं मेरे पास वे आंखें नहीं कि दवा के इन्तजार में मरे किसी नन्हे की लाश

रहा करूं। मेरे पास वे हाथ नहीं जो रोटियों के बदले बहाने दे दूं और मेरे पास वह यौवन भी नहीं जो अभावों की कविताओं से बह जाता रहे। सुन रहे हो ना मुझे कभी मत देखना मुझ से कभी मत मिलना।

बस

तुम्हारी
परिचित अपरिचिता।

मां अपरिचित परिचिता

एक भीड़ है जोड़ों की दूर जाये उतनी दूर का सिलसिला है इस भीड़ का। मैं स्वयं को अकेला पाता हूं इसमें अकारण ही। नहीं जानता कि कभी मुझे करता है इसमें से किसी किनारे के लिए।

शेयर बाजार के कोलाहल से कहीं अधिक कहीं तीखा ठहरा-सा चलता यह सफर। बहुत से अपने-पराये आ-जा रहे हैं और मैं इन सब का लांघना आगे ही आगे थाम लेना चाहता हूं पर मन का अकेला पन टोक देता है, रोक लेता है मुझे। सांस आते जाते अपने अकेलेपन को कम करने अपने सूनहरा मकान के तहखाने में बैठा लिखता हूं— कुछ छोटी-बड़ी पंक्तियां शायद पत्र भी।

बहुत लिखा भी तो नहीं जाता। कभी-कभी पुराने लिफाफे खोलता हूं। अब भी खोलता हूं एक भीड़ बिखर जाती है सामने। इस भीड़ में से एक-एक याद अपनेपन के नारे लगाती है, मुझे बांध लेना चाहती है अपनी बांहों में मगर मैं भाग जाता हूं एक ठूंठ घबराकर रोक देता है मुझे मैं क्यों कि जानता हूं इस ठूंठ को यह वही तेरे कमरे की खिड़की के सामने वाला ठूंठ है जिसे तुम कुहनी टिकाये देखा करती थी मेरी इससे तुलना किया करती थी। मैं इस याद के अपनाये पर एक कड़वी सी हंसी हंस देता हूं। सोचता हूं कितनी समानता है मुझ में और इस ठूंठ में। तुम से इस ठूंठ की और मेरी निष्ठता का बोध दुगुना देता है मुझे। पर ऊंचे बंद कपाटों की दरारों से छन कर आती तेरी खिलखिलाहट गुजरती हुई बहुत कुछ कह जाती है।

यह विवशता इस ठूँठ के कभी न हरियाने की स्थिति की उपज है अथवा तेरे आँगन में बैठे पहरेदारों की भीड़ के भय की उपज मैं नहीं जानता !

तुम शायद यादों के सहारे ही जीवन जिया चाहती हो लेकिन मुझे किसी के सहारे जीने की आदत नहीं।

मैं जाग पड़ता हूँ और मेरे सामने धुंधली सुबह फटने लगती है जिसके नीचे से कुछ कुलमुला सा ऊपर उठने लगता है मुझे यह कुलमुलाना भाता है यह कुलमुलाना चमकते-चमकते चाँदी की पर्त-सा बिखर जाता है मेरे ऊपर मेरे चारों ओर दूर-दूर सारी धरती पर मैं इस पर लिखना चाहता हूँ, जिससे पढ़े भी जाना चाहता हूँ। मैं यह सोचना भी नहीं चाहता कि ठूँठ कभी हरियायेगा।

तुम्हारा अपना
अनाम अकेला



● प्रथम दर्शन

धुंधला पट . उदास चेहरे

धुंधले पट पर उदास चेहरों की परछाइयाँ रोज अपनी कोई न कोई कहानी कहती ही हैं। और ये उदास चेहरे जिनके लिए जीवन है भी और जीवन मृत्यु भी है। जीवन और मृत्यु का यह फासला उदास चेहरों के लिए खत्म होता ही नहीं। खत्म हो भी तो कैसे जब फासला पाटने का सफर कुछ इस तरह से टेढ़े रास्तों से होकर जाता है कि हर रास्ते के बाद उतनी दूरी कहीं हुई लगती है और चलते-चलते आखिर थकी हारी आ जाती है—रुकना पड़ता है—परछाइयाँ रोज अपने उदास चेहरों से इस धुंधले पट पर उभर आती हैं।।

राजन की कलम रुक गयी। थक गया था वह भी। आराम के लिए उसने सामने की कुर्सी पर पैर फैलाये सिगरेट जलाई—धुएँ के बादल छाने लगे—धुआँ! उसके अन्तर की तपिश का—उसके अपनेपन का धुआँ शायद वह चौंक गया' ।

'उसके सामने एक चेहरा उभर आया। धूमिल आकृति स्पष्ट हुई। रेखा!

मैं काम की तलाश में भटकता फिर रहा था। किस्मत भी रूठी। फाटक के पास खड़ा बस की प्रतीक्षा कर रहा था—इतने में एक छोटा बच्चा जो अपने माँ-बाप से पृथक हो गया था दूर से भागता हुआ आ रहा था अचानक एक युवती की चिल्लाहट और मोटर के एकदम ब्रेक लगने की आवाज से मैं चौंक गया मैंने तुरन्त ही बच्चे को उठा लेना चाहा। युवती ने छीना मेरी ओर देखे उसे अपनी गोदी में उठा लिया'

मेरी नजर जब युवती पर पड़ी—मैं भौचक्का रह गया—रेखा थी वह।

उसने धन्यवाद देने को मेरी ओर सिर उठाया कि वह भी सन्न सी खड़ी रह गयी—

तुम!

तुम!!

ओह! यह बच्चा आपका है?

जी हाँ।

उदास चेहरों की भीड़ पीले-पीले चेहरे खुशियाँ न जाने कहाँ गुम हो गयीं? आकृतियाँ क्यों धुंधली होती जा रही हैं "जीवन फिर से क्यूँ अपने हरे रूप के लिए चाह करता है ???

इतने में उसका पति आ गया था। उसका पति - रेखा का पति—बहुत ही शानदार सूट पहने था। पहले मेरी ओर उसने देखा फिर रेखा की ओर—रेखा ने मेरा परिचय दिया—

किशोर! ये मेरे पड़ोसी थे, मित्र भी थे इनका नाम राजन है। राजन! ये मेरे पति हैं।" और सुलभ घनिष्ठता उसके चेहरे पर दौड़ आयी, किशोर ने बखूबी मेरे से हाथ मिलाया, मेरे दिल्ली आने का कारण पूछा—मैंने जैसे ही कहने को मुँह खोला रेखा बोल पड़ी

किशोर! ये किसी इन्टरव्यू के सिलसिले में यहाँ आए हुए हैं। अपने यहीं ठहरेंगे। हम तीनों टैक्सी पर बैठ उसके बंगले की ओर रवाना हो गये।

ये सामान्य घटनायें भी रहकर कुछ कहने को उत्सुक रहती हैं—पर उनको सुनने वाला कोई नहीं। तो क्या जीवन से इनको नाता तोड़ लेना चाहिए? क्या धुंधला पट किसी तूफान से फट नहीं सकता? क्या उदास चेहरों पर बनी रेखायें मिट नहीं सकतीं?

रेखा का आलीशान बंगला। हम ड्राइंग रूम में बैठे। रेखा बच्चे

को चंवर घुमाकर हमारे पास आ बैठी। बातचीत नहीं हो रही थी। बस केवल खामोशी। टेलीफोन की घंटी बजी और किशोर ने कुछ बातचीत की" वह रेखा से बोला

'रेखा ! साहब ने अभी बुलाया है। एक जरूरी काम आ गया है। राजन को खाना खिला देना—मैं उनके साथ शाम का खाना खा लूँगा। और वह चल पड़ा।

मैं और रेखा दोनों रह गये। दोनों एक-दूसरे की ओर देखते और नजरें नीची कर लेते। मैंने सिगरेट निकाली और मुँह में लगायी ही थी कि—

'राजन ! मैंने तुम्हें कितनी बार मना किया' सिगरेट मत पिया करो। फिर आज क्यूं पीने लगे ? यह आदत क्यूं डाली तुमने ? और उसने सिगरेट छीन तोड़कर फेंक दी। मैं चुपचाप उसकी ओर देखने लगा। उसके चेहरे पर एक भाव उभरता और दूसरा चलता पर कुछ नहीं कहती। यह उसकी पुरानी आदत है कि जो भी दिल में होता है उसे कहती नहीं चुपचाप सहन कर लेती है।

स्नान करोगे या पहले नाश्ता लाऊं ? और फिर कुछ ऐसा मुँह बनाया कि जैसे कोई भूली बात याद आ गयी।

'अरे ! तुम तो स्नान से पहले चाय पीते थे न ? ठहरो पहले चाय मंगाती हूँ।

'नहीं मैं आजकल स्नान से पहले कुछ भी नहीं खाता पीता। और चाय की आदत तो कभी से छूट गई मिल जाती है तो पी लेता हूँ। पहले स्नान ही ठीक था। ""इन चेहरों पर नकाब भी लगे रहते हैं कभी-कभी परन्तु कोई भी संजीदा चरण इनकी असलियत धुंधले पट पर बिखेर देती है। मन की छुपी बात भी कहीं धुंधली रह पाती है" और इन चहरों की जिनकी रौनक न जाने कब से उड़ चुकी है ये चहरे ! उम्र से पहले ही झुर्रियाये से लगते हैं चेहरे !! जो पतझड़

। साथी बना चुके हैं जिनके लिए अब बसन्त आता ही नहीं और
। हर समय मचलिये रहते हैं जिन पर पाँडुरंगी लेप क्या चढ़ता है ??

मैं जब स्नान कर, उसी चोले पायजामे वेस्टकोट को पहिन ड्राइंग रूम में आया तो रेखा चाय लिये पहले से ही तैयार बैठी थी। चाय फीकी लगी। मैंने कहा रेखा! क्या चीनी दिल्ली में मँहगी हो गयी ?

नहीं तो तुम जो चाय में चीनी नहीं लेते थे।

'किन्तु आजकल फीकी चाय अच्छी नहीं लगती रेखा! जीवन से मिठास तो चली गयी है—चाय की मिठास तो मत छीनो।

रेखा चुप! हमेशा चंचल शोख, चुलबुली रहने वाली रेखा किसी गम्भीर सोच एवं सद्गृहस्थ हो गयी। जीवन के दिन कोये नहीं—परिवर्तनशील हैं—कल क्या था आज क्या हो गया कल क्या होगा मनुष्य जानते हुए भी अनजान बना रहता है। क्या कभी मैंने और रेखा ने स्वप्न में ऐसा भी सोचा था कि हम अलग हो जायेंगे। मैं सपने में सोचता ही रहा रेखा न मालूम कब से पास में खड़ी थी। मेरे कंधे को हिलाकर बोली—

खाने का समय हो गया राजन् जी! कब से पास में खड़ी हूँ। देख रही थी तुम कुछ बोलो परन्तु तुम तो ।' मैं और रेखा खाने की मेज पर गये। कुछ देर फिर वही खामोशी।

राजन! तुम इतने खामोश क्यों हो ? पहले तो एक मिनट भी चुप नहीं रहते थे ?'

और तुम कहा करती थी—ज्यादा मत बोला करो। मैं बोर हो जाती हूँ है न ?

'किन्तु आज तो मैं तुमसे कुछ सुनना चाहती हूँ यह खामोशी तो मेरे इस जीवन में है ही'।

'क्या कहूँ रेखा! मेरा जीवन तो तुम देख ही रही हो। बस लिखता हूँ और पेट पालता हूँ तुम्हारे जैसा सुख मेरे पास कहाँ।

तुम्हें क्या मालूम मैं सुखी हूँ या दुःखी। मैं कुछ बोलती नहीं तो इसका मतलब यह हुआ कि मेरी भावनायें उमंगें ख्वाहिशें सब मिट गयीं।'

और रेखा रोने लगी। खाना वहीं छोड़ दिया। बेसिन पर जाकर उसने मुँह धोया। मैं भी हाथ धोकर ड्राइंग रूम में आ गया।

इन चेहरों पर बिखरी स्मृतियाँ जिनका एक-एक इतिहास है यदि ये इतिहास के पन्ने सजीव हो बोल उठें तो समाज ही बदल जाय। किन्तु इन चेहरों में यह ताकत नहीं क्योंकि ये चेहरे गूंगे हैं धीरे-धीरे धूमिल होते जा रहे हैं अपने हर प्रयत्न से वे उन स्मृतियों को खत्म कर देना चाहते हैं जो हर बार उनके इतिहास के पृष्ठों को खोल देती है। इतिहास जो केवल कहानी है। समाज की ओर ये स्मृतियाँ उभरती नहीं केवल इसलिए न कि हमने समाज को या समाज ने हमको गलत समझ लिया !

रेखा भी मेरे सामने आकर बैठ गयी। उसने कहा राजन एक बात कहना चाह रही हूँ।

बोलो' मैंने नजर से इशारा किया।

तुम राजन! अभी तक गलत समझे हुए हो—आज इतनी एडवांसमेंट दिखाई देती है। प्यार में स्वतन्त्रता की चाह बनी रहती है। ऊपर से सभी इस बात की हामी हैं कि प्यार के बीच में दीवारें न खड़ी की जायें परन्तु राजन! ये नवीन विचार केवल ऊपर ही ऊपर तैरते हैं अन्दर अभी तक वही पुराने संस्कार घर किये हुए हैं। अपना शादी शुदा जीवन भार बन जाता—इन संस्कारों भरित दुनिया में। मैं शादी करने के लिए मजबूर हो गयी थी क्योंकि मुझे औरों की तरह समाज में जिन्दा रहना था।"

रेखा यह कहते-कहते रो पड़ी थी। खामोश रेखा! जिसने जीवन की हर बात के साथ समझौता किया था। अपने मन की बात कभी कहनी भी तो नहीं। वह उठी और मुँह धोकर वापिस चली आयी।

राजन ! दोपहरी में कुछ देर पास वाले कमरे में जाकर आराम कर लो।'

इन चेहरों की दुनिया भी अलग ही होती है। इनकी बातें कोई समझता तक नहीं या समझने की कोशिश नहीं करता। ये अपने में ही घुटते चेहरे उन पुनरावृत्तियों के लिए स्वप्न संजोते हैं जो कभी साकार नहीं होते। इनकी सड़क पर चलती लम्बी कतारें जो न मालूम कहां से कहां चली जा रही हैं—ये चेहरे मूक हैं—ये चेहरे जो तृप्ति की आस छोड़ बैठे हैं। इनकी आवाज रुक गयी है—इनके गले अवरुद्ध हो चुके हैं—ये खामोशकंठी जो अपने कंधों पर कुछ ना कुछ लिये सम्भाले ढोये जा रहे हैं।

मैं भारी मन लिये पलंग पर लेट गया। न मैं यहां आता और न ही यह दुखी होती। मैं भी कितना अजीब आदमी हूँ—एक शांतिमय जीवन में कुछ दिनों के लिए तो अशांति के बीज बिखर ही दिए मैं यहां क्यों आया चला जाता रेखा से उस समय मिल तो लिया ही था पर रेखा ने मेरे लिए झूठ क्यों बोला ? तो क्या रेखा अब भी मुझे नहीं नहीं मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए।

—ठंडी रात में अपनी दूरियां नापने के स्वप्न लिए चेहरे ! चाँद-सितारों के साथी सड़कों के प्रेमी—एक ही चाल से चलते—मशीनी जीवन की बेल को चिपकाये हुए—पुतलों की तरह-जान होते हुए भी सांसों पर विश्वास न करने वाले—ये सब चेहरे ! धुंधले पट पर एक के बाद एक छाय जा रहे हैं इनकी परछाइयां तक जिन्हें छोड़ चली हैं और जो एकाकी हो गये हैं—!

रेखा कमरे में आयी और मेरे पास पलंग पर ही बैठ गयी। मैंने उसे अलग कुर्सी पर बैठ जाने के लिए कहा।

"तो क्या अब तुम्हारे पास भी बैठने तक का अधिकार नहीं रहा ? वह बोली।

रेखा ! शादी शुदा हो कोई देख लेगा—कई प्रकार की बातें बन जायेंगी।'

'तुम्हारा यह ज्योतिष शास्त्र तुम्हारी जीवन नैया खेने में समर्थ हो सकेगा ?" मैंने उससे प्रश्न किया।

"कालेज के बाद में यही मेरा जीवन चलायेगा और समाज में मुझे इज्जत देगा। मुनिकुमार ने दृढ़ स्वर में कहा ऐसा तुम्हारा शास्त्र विश्वास है पर यह निरर्थक है सही तो यह है कि अगर मनुष्य को अब पर विश्वास हो तो वह अपना भाग्य चाहे जैसा बना सकता है।" रमेश ने तनिक चिढ़कर यह बात कही।

"हो सकता है। लेकिन मैं इतना जरूर कह सकता हूँ कि केवल विश्वास से भाग्य नहीं बनता। यह लिफाफा मैं रमाकान्त को देने जा रहा था इसमें उसके पाँच वर्ष के आने वाले भविष्य का पूरा चित्र है। यह मैं तुमको दे रहा हूँ। कभी भी तुम्हें समय हो तो इसे खोलकर पढ़ना और उस मनुष्य के बारे में जानना। रमाकान्त को तुम अच्छी तरह जानते हो। इसी वर्ष आइ. पी. एस. में चुन लिया गया है और अब यहीं नजदीक वाले शहर में एस. पी. लगा हुआ है। कल मिलने आया था मुझ से। मैंने सोचा और तो क्या सोचा हूँ भविष्य के लिए कुछ जो दिखाई दे रहा है बताता हूँ।"

मैंने अत्यन्त ही नम्र स्वर में कहा "मुनिकुमार तुम अपने जीवन को बरबाद करने पर तुले हुए हो। यह ढपोरी विद्या केवल अनपढ़ और अन्धविश्वासी लोगों के लिए ही मार्ग प्रदर्शित कर सकती है। हम पढ़े-लिखों के लिए नहीं। और मैंने वह लिफाफा लापरवाही से एक पुस्तक के बीच रखा दिया।

तुम ऐसा इसलिए कहते हो मित्र ! कि इस विद्या को जानने वाले तुम्हारे हमारी तरह कालिजों में नहीं पढ़े और न ही उनका रहन सहन आज के युग के अनुसार है। यदि यह भी सूट-बूट पहन कर अच्छे धो-मैन की तरह अपनी चीज का प्रदर्शन करें तो सभी उन्हें मानो भाग—जाये जायें। फिर भी मैं जिन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि यह एक विज्ञान

साइंस है गणित है। और तुम सभी लोग पूर्णग्राही हो। मियर्स ने सिया कि यह एक माया है, भ्रम है प्रपंच है। इसको कभी सकते ही नहीं।

बात उसी दिन आयी-गयी हो गयी।

उस दिन के पश्चात मैंने उस लिफाफे को संभाला ही नहीं। दिन में अनेक परिवर्तन आ गये। मेरी भी बदली हो गयी और मैं अपना सारा सामान लेकर वहाँ और जाने की तैयारी करने लगा तो अप्रत्याशित यह लिफाफा मिल गया और इस लिफाफे ने उन बातों को पुनः जीवित कर दिया। मैंने लिफाफा खोलकर पढ़ा—

११ अक्तूबर १९६२ की शादी।

२२ सितम्बर १९६३ पत्नी की किसी रोग से मृत्यु।

२८ सितम्बर १९६४ तक अत्यन्त सुखी जीवन और उसी दिन अचानक मृत्यु यह भी हत्या द्वारा।

रमाकान्त की शादी और उसकी पत्नी की मृत्यु वाली घटना को मैं बहुत करीब से देख चुका था। और उनकी तारीखें भी सही ही थीं मन में एक शंका उठी कहीं रमाकान्त की मृत्यु वाली बात भी सत्य न हो जाय। अभी मैंने मृत्यु वाली तारीख को गौर से देखा। २८ सितम्बर १९६४ लिखा था और आज तारीख २७ सितम्बर है। मैंने सोचा—क्यों न रमाकान्त को इसकी सूचना दे दी जाय। टेलीफोन करने पर मालूम हुआ एस पी साहब दौरे पर गये हैं आज शाम तक लौटेंगे।

कार लेकर मैं एस पी साहब की तरफ रवाना हुआ। वे मेरे यहाँ से अस्सी मील दूर एक शहर में एस पी थे। रास्ते में कार का पिछला पहिया बस्ट हो गया। जैसे-तैसे दूसरा पहिया लगाकर रवाना हुआ। रास्ते में पड़ने वाली पुलिस चौकी के पास गुजरते हुए सोचा

कि क्यों नहीं यहीं एस. पी. साहब के बारे में पूछ लूं। चौकी में जाने पर मालूम हुआ एस. पी. साहब रात को पास वाले गांव में तफ्तीश करके यहीं आकर विश्राम करेंगे। सोचा अच्छा हुआ यहीं मिल लूंगा। रात के दो बजे तक इन्तजार करने पर भी उनका आना न हुआ तो फिकर हुई और उसी समय इंचार्ज चौकी को कहा कि किसी आदमी को भेजकर उनका पता करवाइए। चार बजे सिपाही ने आकर बताया कि साहब तो गांव से तफ्तीश करके सीधे शहर चले गये हैं।

उसी समय शहर की तरफ तेजी से रवाना हुआ।

सुबह हो गयी थी।

मैं जैसे ही वहां पहुंचा, वैसे ही मुझे रमाकान्त के बंगले में भीड़ नजर आयी। मालूम हुआ कि कुछ लोगों द्वारा कल रात उनको मार दिया गया है। उनके गले में एक रस्सी का फंदा था।

मैं सकते-सा खड़ा रहा। सोचने लगा कि मैं क्यों नहीं सीधा यहीं आ गया?

एस० के० सिद्दनोई

काची-केल

घन घूमन
मन मालवे
टिकियो जेसलमेर।

इधर के किसानों में आज भी यह उक्ति प्रचलित है। अकाल को किसी मर्द का बच्चा समझ कर उसके विषय में कहा गया है, घूमन में यह आता-जाता रहता है मालवे में जाने की अभिलाषा रखता है और जैसलमेर तो उसका स्थाई निवास है, वहाँ हमेशा रहता है।

टोडगी एक छोटा सा गाँव है। जैसलमेर प्रदेश का एक छोटा कस्ब। बारह वर्ष बीत गये एक बार यहाँ लगातार सात वर्ष तक अकाल पड़ता रहा। एक बार थोड़ी हल्की बरसात धरती अपने हृदय से निकाल बीजों को अंकुर देती, वे थोड़े मुस्कराते और पानी के अभाव में प्यासे तड़प कर प्राण त्याग देते। पता नहीं यह पृथ्वी कहाँ बीज छुपाये रखती है कि हर बार इसी तरह पौधे उगते और मिट जाते, कभी बीज न बना पाते।

आठवें वर्ष के प्रारम्भ में ही आखातीज के दिन लोगों ने शकुनों के आधार पर बतलाया कि आज वाला वर्ष सोलह आने फलेगा। ग्रामीणों का विज्ञान चिड़ियों की भाषा-बोली का पक्षी किस समय कितनी दूर पर कैसे स्वरों में बोला। इसका हिसाब ही उनका विश्वास का आधार होता है। जैसा किसान इस गाँव का चौधरी था। उसके लिए इन बातों में बड़ा आकर्षण था। चौधरी होते हुए भी लक्ष्मी उससे रूठ गई थी। उसे यह पद सम्पन्न दौलत से या जाति समर्थकों से नहीं मिला था उसकी

न्याय प्रियता निष्पक्षता और ईमानदारी से ही अपना स्वर स्वयं मुखरित किया था। वह नित्य भगवान की माला जपा करता था भक्त जनों में भी उसका मान था। परन्तु इतना सब होने पर भी उसे दुःख पर दुःख के थपेड़े झेलने पड़े।

ऐसी माली हालत उस पर सात वर्ष का लम्बा दीर्घायु अकाल। चौधरी के सब पशु एक-एक करके उसकी आँखों के सामने आँखों में आँसू भर भर कर मर गये। उसने भरसक प्रयास किया था उन्हें बचाने का। अपनी स्वर्गवासी पत्नी के गहने भी उसे बेचने पड़े जिन गहनों को उसने अपनी एक मात्र कन्या कृपा की शादी के लिए संजोकर रखा था उन्हें भी पेट की अग्नि शान्त करने के लिए हृदय पर पत्थर रख कर महाजन को देना पड़ा।

बदले में उसे मिले घुन चाटे मोठ और चने बीज। मोठ-बीज की रोटी उनके लिए सन्तुलित भोजन था जिस में संजोये विटामिन उनमें ताकत पैदा कर रहे थे।

सत्रह अठारह वर्षीया युवती। गदराया यौवन मंझला कद बड़ी आँखें फुदकती चाल कभी हँसी का फव्वारा, कभी गुस्से की तमतमाहट घुल मिलाकर बड़ी अजीब फिर भी सुहानी लड़की थी वह। सिर प्रायः नंगा ही रखती बराबर वाले बहिन छोटे बच्चे बुआ कह कर उसे सम्बोधन करते। यही गाँव की रीति है। वह चौधरी का संसार थी जो उसे साधुओं के साथ जमात में जाने से रोके थी।

आषाढ़ मास लगा। आसमान धुंधला गया। एक दो पहर को उत्तर दिशा से तित्तर पंखी बादली झाँकने लगी। किसान प्रसन्नता से झूम उठे। उनका विश्वास शकुनों पर भरोसा। मानो वर्षात हो गई उनके अभिहान अनाज से भर गये हों। वास्तव में उनका विश्वास सत्य सिद्ध हुआ। बदली ने रंग बदला। वह धुंधली बनी गहरी बनी और फिर काली घटा बन कर चारों ओर छा गई। चोरे की चोटी पर बड़ा किसान था उठा

"बरसा रे बादीला,
मोती नीपजे'

रात के अंधेरे में घटा गाजने लगी। कुंवारी धरती की प्यास बुझने लगी। उसने तृप्त होकर पिया। सारी बूंदें भर गई। प्रातः कालीन पवन चलन लगी लोगों को आज नींद नहीं थी खेतों से आरही सोंधी बास मानों श्रम पीड़ित पृथ्वी के पसीने की हल्की महक हो।

हल्के प्रकाश में किसान अपने हल बैल लेकर खेत जाने लगे। ग्रामीण बालायें प्रसन्नता में फुदकती अपनी पेवटियों में रखे नये छलफटे भरे कपड़े पहन बड़े मटकियां लिये 'नाडि' की ओर चल पड़ी। खारा-मचला पानी पीते हुए सात वर्ष गुजर गये थे। यह पाखर पानी उनके लिए अमृत तुल्य था। सखियों से भी रही थी एक दूसरी पर उछाल रही थी। हृदय की उछास बाहर आ रही थी।

भेरा चौधरी की हालत खस्ता थी। कभी समय था जब एक साथ सात हल जुतते थे। भगवान की लीला। एक-एक कर उसके सात बेटों को किस्मत उठा लिया। वह मूक बना सब कुछ देखता रहा अपने खिलाये सुमनों को कोयला बनाता रहा। एक मात्र उसकी सन्तान कन्या बची जिसे वह स्नेह में भिगोकर 'लछीया' कहता था। घर में बाप-बेटी दो थे। हल जुतना मुश्किल था। वर्षा के प्रथम दिन किसान के खेत में हल न जुते और उसके बाप के ठीये पर काश्त न चढ़े इसका दुःख वही महसूस कर सकता है।

चौधरी महाजन के पास गया। उसका पहले का काफी उधार पड़ा था। अपनी पत्नी की अन्तिम निशानी नाक की नथ देकर वह बोने के लिए 'बीज' और खाने के लिए वही पुराने घुन खाये मोठ ले आया जिन्हें शायद उसी ने कभी औनूना सस्ता दिया था।

दूर-दूर तक सुनसान फैला हुआ वीरान। आषाढ़ की चिलचिलाती तेज धूप। धूप के पहाड़ ही पहाड़ नजर आरहे थे जासु लो शरीर की भी गर्मी से डर कर शरीर में ही समा गई थी। हवा के रुकने पर सारा

खून पसीना बनकर बह जाना चाहता था। एक बूढ़ा किसान अपने अस्तित्व से जूझ रहा था। वह अपने कंधे पर 'हल' रखे हल खींच रहा था। पीछे उसकी लड़की रूपा बीज बो रही थी। हड्डियों का ढाँचा भेवा चौधरी स्वयं हल खींचकर अपनी रूपिया को मुक्त देने का भ्रम में रहा था। इन्सान का फर्ज उसकी मूल कितनी कड़वी होती है इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता था। अभी आधा दिवस ही बीत पाया था बूढ़ा थक गया।

बाप-बेटी रुक गए। सूखी खेजड़ी के नीचे ठंठलों की बीमार छाया में बैठकर 'मोटकी' का गर्म पानी पिया। प्याज रोटी खाई वही उनके लिए 'फ्रूट जेली' थी और वे हिम्मत बटोर कर फिर जुत पड़े।

रूपा ने ऐसा कड़ा परिश्रम कभी नहीं किया था। पहले वह सात भाइयों की बहिन थी वह भी उनके बाद जन्मी छोटी बहिन। आज उसे अपने अकेलेपन पर रोना आता था। पता नहीं क्यों चौधरी ने जबसे अपनी बिटिया को बीज बोने के लिए कहा था तभी से वह बहुत ही गम्भीर बन गया था उसने अपने दिल पर शायद कोई पत्थर रख लिया था। जिसका वजन सहन उसके लिए मुश्किल हो रहा था। इसलिए रूपा को भी बातचीत करने का साहस नहीं हो रहा था। उसके हाथों में फफोले पड़े पड़कर फूट भी गये। उनमें सफेद पानी आता था जब हल को उठाती तो उनमें एक टीस उठती जिसे वह अपने ओठों को दाँतों से दबा कर अन्दर ही पी लेती। उसने घुटनों तक घाघरा को लपेट रखा था सारा शरीर पसीने से चू रहा था चोली पर पसीने के बार बार सूख जाने से सफेद धारियाँ दिखाई बना रही थी ओठों पर पपड़ियाँ जम गई थी। सारा पसीना ओठों में गिरकर चिरचिरा था। वह बीतती सदी में जन्मी बाला आदिम युग से जूझ रही थी।

अन्त में पृथ्वी का घुमाव पूर्ण हुआ। वह छुट्टी होल का मोघू था चौधरी ने हल छोड़ कर एक लम्बी साँस ली। पीछे मुड़ कर अपने श्रम से बनाई लाल धरती को देखा मनमें एक आत्म सन्तोष की प्रसन्नता

झलक उठी । हिसाब लगाया ।

"बीस पायली चुक गई है रूपा ! एक अंटकी बाजरी चाहे बारे में समझो ।

रूपा ने कोई उत्तर नहीं दिया । जैसे ही उसने बीजनी को एक तरफ छोड़ा । छन' 'न' न ! वह एड़ी से चोटी तक कांप उठी । उसका व्यथित हृदय एक गहरी पीड़ा से रो उठा । बीजनी बन्द हो गई थी करीबन उसके आधा सेर बाजरी भर गई थी आधे दिन का श्रम बेकार हो गया था । उसने धीरे से बुझे दिल से बीजनी को अपने पीले में खाली कर लिया । चौधरी किसी विचार में खो गया था । वह इस परिस्थिति के बारे में कुछ न जान सका । वह चाहती भी नहीं थी क्योंकि इस घटना से सामने आने वाले की वह कल्पना कर सकती थी । चाहे उसके बापू उसे कुछ न कहते परन्तु वह कहा श्रम समाया हुआ हिसाब अपाढ़ का दिन हाथ से चला गया था । रूपा एक वाले पहर बोझ छ दब गई ।

थक मांदे बाप-बेटी घर आये । वही रूखी रोटियां । मेघा ने थोड़ा सा गुड़ हांडी में से निकालकर रूपा को देते हुए कहा—

'ले बिटिया थक गई है गुड़ से थकावट मिट जायेगी' यद्यपि यह कह तो दिया था परन्तु उसके मन ने बीच में ही जैसे उसे रोक दिया । उसका झुर्रियों पड़ा चेहरा आंसुओं से भिसल गया । वह कुछ और कहना चाहता था परन्तु शब्द बीच में ही रुक गए ।

'सांवरिया तेरी मरजी है, कितनी सस्ती चरचा है । यही रूपा चांद चूरमा नहीं खाती थी ये शब्द उसने अपने से ही कहे मन बैर्य का पल्ला पकड़ते हुए प्रकट में इतना भर कहा—

'धीरज धर बेटी हमेशा ये दिन नहीं रहेंगे ।'

वह थका मांदा पीछे बीमास से भग गया, वहीं आंगन में उसे नींद ने समेट लिया ।

रूपा रोटी न खा सकी । उसके कोमल निश्छल हृदय पर पड़ा

भारी बोझ उसे बार-बार उदासी बना रहा था। अपने बापू से छिपाने के कारण—वह बोझ उसे अन्दर ही अन्दर सुलगा रहा था। वह सोचने लगी। चार दिन बाद जब कमरे खाली होंगे तो भेद अवश्य प्रकट होगा उस समय मेरे बापू को कितना दुख होगा और वह बार दी हुई धरती साल भर के लिए बोझ बन जायेगी। यही कुछ सोचते-सोचते वह भोर से उठी सीधी खेत की तरफ चल दी।

रात कट गई थी। चाँद और आसमान में हल्का प्रकाश फैल रहा था रूपा खाली कमरों में अपने हाथों से धीरे-धीरे बाजरी के दाने डाल रही थी। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ती जाती उसके हृदय का बोझ हल्का होता रहता वह कल्पना करने लगी जब यहाँ बूटों वाली बाजरी झूम रही होगी वह उसकी छाया में बैठ अपने बापू के साथ मतीरा खाती हुई यह बात बतायेगी। उसका बापू एक हल्की-सी चपत उसके गाल पर लगा कर कहेगा—

'अरी पगली मुझे क्यों नहीं बताया।' उसने एक हाथ अपने गाल पर रखा था कि उसके मुँह से एक आह निकल गई।

खड़खड़ाहट एक बेहोशी पानी-पानी की धीमी आवाज। और सब कुछ शान्त।

प्रात: चौधरी ने देखा रूपा की खटिया खाली पड़ी की ओर से आवाज लगाई—रूपा! रूपा! बिटिया!

कोई उत्तर नहीं मिला। वह पद चिह्नों को देखता भागता खेत गया। वहाँ जो कुछ उसने देखा और ज्यादा न देख सका। उसका शरीर सुन्न हो गया। एक आह के साथ वह गिर गया जिसके बाद फिर कभी नहीं उठा।

लोगों ने देखा—नागनाथ की लकीर थी। रूपा का शरीर बिलकुल हरा हो गया था। चिड़ियाँ उड़ गई थी। चिह्न शेष था। पास में बाजरी का थैला पड़ा था।

उस जगह आज भी एक हरी कच्ची खेजड़ी है। लोग कहते हैं वह

कभी बदरंग नहीं होती नित्य हंसती रहती है अषाढ़ मास में यहीं ऐसा लगता है। कुंवारी लड़कियां जाती हैं 'रम्मा' को देवी मानकर पूजती हैं। उसके गीत गाती हैं—

'म्हारे बाबोजी बुलावे
रम्मा बाई
घरे पधार ।

अब वहां अकाल नहीं पड़ता।

सागर

कस्तूरी-मृग

'अभी सोई नहीं डा० ?' कहते हुए डॉ० ब्रजपाल ने अपनी पड़ोसी लेडी डा० सुधा के कमरे की जलती बत्ती की ओर देखा अपने रूम की ओर बढ़ गये।

डॉ० ब्रजपाल क्षयरोग के विशेषज्ञ हैं और बस्ती के लोग कहते हैं—आज से तीस वर्ष पहले सुधा मेडिकल कॉलिज से डिग्री लेकर सरकारी नौकरी को ठुकरा इनकी प्राइवेट क्लीनिक में आई थी। दोनों की उम्र सांझ की धूप की भांति ढल रही थी। दोनों आपसी सहयोग से मानव कल्याण के लिए जी रहे थे जिला रहे थे।

डॉ० ब्रजपाल धीमी गति से अपने शयनकक्ष में वापस चले गये और उनके कमरे की बत्ती बुझ गई। तभी डॉ० सुधा के कमरे की चिटकनी खुलने की आवाज हुई और वे बरामदे में भारी कदमों से बाहर आईं। ठुड्डी के नीचे का मांस झुकने के कारण कुछ लटक गया था। आँखें लाल थीं लगता था अभी तक उनको नींद नहीं आई है। रात का आखिरी पहर चल रहा है। सर्दी का अनुमान उनके कांपते हाथों से लगाया जा सकता है जो उनके स्वेटर में ठुस से गये हैं। वे बरामदे से उतरीं और कड़कती ठंड में भी नंगे पाँव दूब में ओस के उभरे कणों पर चलने लगीं।

डॉ० सुधा जब भी परेशान होती हैं इसी प्रकार घूमती हैं मूक हो जाती हैं बाग की खिलती रात रानी पर नजर जम जाती है या फिर दृष्टि शून्य में दूर कहीं अटक जाती है। बड़ी अजीब खामोशी-सी लगती

है, उस समय जैसे रात के तीसरे पहर समुद्र में ज्वार भाटा आता है फिर सभी कुछ चुप चुप शान्त हो जाता है। रह जाती हैं लहरें जो छोटे पानी की सतह पर सलवटें बनाती हैं मिटाती हैं। दूर मछुओं की अन्धेरी बस्ती में सियार चीखते हैं, समुद्र की लहरें धीमी घबराहट पैदा करती हैं।

डॉ॰ गुप्ता की जिन्दगी भी कुछ इसी तरह से सुनसान है। कभी-कभी ज्वार आता है हिलोरें लेता है, लाठें मारता है उनके बूढ़े दिल पर अधिक समय तक नहीं टिकता। भाटा जैसे अधिक स्थाई होकर आता है और आज भी उनका बूढ़ा दिल खामोशी में एक 'टीस' लेता है अजीब सी। जब भी वह 'टीस' उठती है, थरथराहट होती है और हारकर दृष्टि शून्य में अटक जाती है।

उनके हाथ यंत्रवत फाटक को खोलकर आगे बढ़े और फुटपाथ पर धीरे-धीरे बढ़ने लगे। दूर बने गोल चक्कर तक रात की कालिमा अपना आंचल फैलाकर खड़ी थी। दूर-दूर तक इस्पात के तारों से जुड़े खम्भों पर रोशनी के पुंज बुझे-बुझे मूक घुटे-घुटे से लटके हुए थे। लगता था रात की कालिमा प्रकाश को ग्रहण करने के लिए अपना आंचल ऊपर की ओर बढ़ा रही है, आंचल फैला था पर प्रकाश नहीं हो रहा था। शायद खम्भे घुट-घुटे से अपने न झुक पाने की असमर्थता पर झुंझलाये बेबसी लिए खड़े थे।

तभी उनके पांव ठिठके। उन्हें लगा कि उनके भारी पांव आगे स्वतः ही बढ़ गये। नेत्रों से करुणा की सी चमक उठी। देखा एक बूढ़ा कराह रहा है, पास ही में खून की कै पड़ी थी। उनके हाथ अपरिचित बूढ़े के कन्धों पर जा लगे। खांसी रह-रह कर बढ़ती जा रही थी।

किसी तरह से बूढ़े को सहारा देकर क्लिनिक में ले आई। चौकीदार को जगाकर पानी गर्म करने को कहा और डॉ॰ जसपाल के दरवाजे पर लगी घंटी का दबा दिया। वह ट्रिररर ट्रिररर बज उठी। डॉ॰ जसपाल सर्दी से बचकर चुंधियाते से बाहर आये और भारतवश 'ऐसी ईमर्जेन्सी

कोर्स' पूछा और डॉ० सुधा ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

बूढ़ा बिस्तर पर सर्दी से कांप रहा था। रह-रह कर खांसी के दौरे पड़ते और बलगम के साथ खून के गाढ़े थक्के निकल पड़ते। डॉ० जयपाल उसे देखने के बाद काफी गम्भीर हो गये और 'नो होप' कह करके उन्होंने चार इन्जेक्शन कुछ समयान्तर से लगाये और डॉ० सुधा से कहा 'इफ यू डोन्ट माइन्ड' कृपया मरीज के चेहरे को साफ कर दीजिये। उसकी दाढ़ी तथा गले तक बलगम व खून जमा है। फिर जरा रुक कर 'सोरी' कहा और अपने कमरे की ओर चले गये।

"चौकीदार, चार कम्बल ले आओ जरा जल्दी" कहकर डॉ० सुधा ने टेबिल लैम्प पास खींचा और 'गॉज' गर्म पानी में डुबोकर मरीज का चेहरा साफ करने लगीं। न मालूम कितने महीनों की गर्द बलगम व खून से सनी दाढ़ी को सूख गई थी धोने में काफी समय लगा। पर अचानक उनके हाथ ठिठक गये। बूढ़े के झुर्रियों भरे हाथ कांपने लगे। उन्होंने जल्दी से लैम्प यथास्थान पर रख दिया दृष्टि शीशे की खिड़की में से बाहर ओस से गीली सड़क पर शून्य में खो गई। रह-रह कर वे मरीज की ओर और से देखती और फिर शून्य में खो जाती। सड़क की रोशनी के बल्ब के चारों ओर पतंगे भिन्न-भिना रहे हैं उनका मन भी इसी प्रकार भुनभुना रहा था। एक अजीब-सी 'टीस' फिर उभर रही थी। रात की कालिमा आंचल फिर खम्भों से प्रकाश की भीख मांगने लगे थे पर वे घुटे-घुटे से सहारे बुझे-बुझे खड़े खड़े थे। दूर प्राची में धीरे धीरे लाल लकीरें उभरने लगी। उनके दांत बजने लगे। वे वापस मुड़ी पर चेहरा लटक गया था झुर्रियों जैसे पड़ गई थीं आंखें जैसे निढाल हो गई थीं। हाथ कांप रहे थे। बुढ़ापे की चमड़ी में सलवटें पड़ गई थीं। वे मरीज के पास की आराम कुर्सी पर लुढ़क गई और न जाने कब आंखें झपक गई।

"डॉ० डॉ० उठो-उठो देखो आठ बज गए हैं। तुम्हारे मरीज की हालत बहुत खराब हो गई है। वह बेहोश है। डॉ० जयपाल डॉ०

सुधा को जगा रहे थे। उन्होंने चौंक कर देखा—सारा स्टाफ ड्यूटी पर आ गया था। नर्सें मरीज के बिस्तर के पास खड़ी थीं। डॉ॰ मरीज पर झुके हैं। वे कांपने लगी कैसा भयानक स्वप्न था। किसी बहुत बड़े पुल पर वे भागी जा रही थीं किसी छाया के पीछे न मालूम क्यूं और फिर पुल कांपने लगता है धक-धक बढ़ रही है भागते-भागते वह काली छाया पुल से नीचे गिर पड़ती है। विशालकाय काली कोई चीज उनके ऊपर से गुजरने ही वाली है। वे सम्भली और लपक कर पलंग के पास पहुँच गईं। डॉ॰ सक्सेना व नर्सें आखिरी कोशिश मरीज को बचाने की कर रहे थे। कुछ ही मिनटों बाद मरीज की आंखें खुलीं एक दम सफेद धुन्धली आंखें, किसी ओर को जरा सी उठीं और पुतलियां फिर गईं। डॉ॰ ने हाथ टटोला और झुक कर मस्तक नीचा करके एक गंभीर सांस छोड़ी और मरीज को सर तक ढक दिया। नर्सें उपकरण उठाने लगीं। वह भी सब-कुछ समझ गईं। डॉ॰ के कदम आफिस की ओर बढ़ गये। उन्हें लगा कोई भारी चीज उनके कलेजे पर जम रही है—दबा रही है। कमरे की दीवारें जैसे सिमट रही हैं वे बीच में आ गई हैं। फिर वे अपने सोने के कमरे में लड़खड़ाती-सी चली गईं।

"मैडम मरीज की तलाशी में यह किताब मिली है इसे कहाँ रखा जाय ? सिर हिला कर देखा तो एक नर्स हाथ में किताब लिए पूछ रही है। उन्होंने उसे अपने हाथ में ले लिया और जाने के लिए इशारा कर दिया। उलटने पलटने पर पता चला वह एक डायरी थी। वे सो गईं पर मन कहाँ ? उनकी पीठ दर्द करने लगी शायद अब उसमें इतनी ताकत भी नहीं बची है कि बदन का भार वहन कर सके। फिर जैसे कुछ होश आया और उँगलियों ने डायरी के पन्ने उलटे डायरी काफी पुरानी थी जीर्ण-शीर्ण। आज से पैंतीस साल पहले की तारीख का पन्ना खुला।

'भाग्य की बात भी कितनी अद्भुत होती है। सुधा अब कॉलिज छोड़ कर मेडीकल कालिज में डाक्टरी पढ़ने इलाहाबाद जा रही है। और

लगता है कोई खंजर से अंतड़ियों को चाकू से तराश रहा है। नौकरी छूटे तो दो साल हो गये। अब तो बस भूख-ही-भूख पर इस भूख में भी एक 'टीस' उठती है। दर्द उभरता है। आज सुबह से कै भी बढ़ गई है। लगता है मुँह से लाल काले खून की पनाल फूट गई हो। धुन, मेरी 'धुन'। चाहता भी हूँ अब तुम्हें याद न करूँ चाहता हूँ खून की इस कै के साथ इस 'टीस' को भी बाहर निकाल दूँ। पर चाहा कब हो पाता है? खून तो अधिक निकल रहा है पर यह 'टीस' एक घने कुहरे की तरह फैल रही है। ग   । फिर आगे काले से धब्बे थे—शायद खून हो।

डॉ० सुधा की नजर से निकली पानी की धार फिर तकिये को भिगो गई। जाने कब शून्य में अटकी आँखों की पुतलियाँ फिरना भूल गईं। दोपहर को डॉ० जसपाल ने डॉ० सुधा के शरीर को बर्फ की सिल-सा ठंडा पाया। आँखों के दोनों ओर कनपटी पर आँख का खारा पानी बहकर सूख गया था।

●

०अमरेश शर्मा

एलबम के भीतर

अन्त राकेश ने मुझे कहा, "कमलेश ! तुम्हारा नाम तो ऐप्फिसफट-एड वाणि व्यक्ति होना चाहिए था। हाँ यथार्थ में यह नाम मेरे लिए उपयुक्त ही है। मैं उसके मनोविश्लेषण को दाद देता हूँ। हालांकि मैं भी कइयों के चेहरे पर थकावट की शिकन देखता हूँ। वे मुझे भी सूखे, किसी असाध्य रोग से पीड़ित और अपनी कुण्ठाओं के शिकार हुए से प्रतीत होते हैं। अन्तर केवल मेकअप का है। कोई क्रीम स्नो मलकर अपनी झुर्रियां मिटाना चाहता है। कोई हँसकर अपना गम भूलना चाहता है और कोई एकान्त में अकेला आँसू बहाकर अपने दुःख को बिसारना चाहता है और मैं ! गुमसुम अपने कमरे में पड़ा-पड़ा अपने आपको मन ही मन में कोसता रहता हूँ और फिर कहीं दूर भागना चाहता हूँ—एक ऐसे वीरान और घने जंगल में जहाँ कम से कम खूबसूरत शक्ल नजर न आवे।

नारी सारी सृष्टि की जननी है। वह माँ है। अर्धांगिनी है। वीरान जंगल में कूकती कोयल है। अंधेरी दुनिया की रोशनी है। लेकिन क्यों ? मेरे मन में यह सब व्यर्थ विचार आते हैं। क्यों यह सब एक ढकोसला सा प्रतीत होता है। क्यों मुझे यह उपदेश एक घिनौना-सा महसूस होता है। मैं तो केवल एकान्त में पड़ा-पड़ा अपने आपको जबरन सान्त्वना देता हूँ। हाँ यह मानकर, मुझे कुछ धैर्य अवश्य होता है। शरीर में शक्ति आती है। जिन्दगी से कुछ मोह होता है। यह क्या ? प्रायः दुनियाँ में सब मेरी तरह ही हैं। मुझ में और उनमें कोई अन्तर नहीं है। अन्तर क्यों हो ?

मैं अखबार पढ़ता हूँ वे भी पढ़ते हैं। मैं चाय पीता हूँ वे भी पीते हैं। मैं जिस वातावरण में रहता हूँ वे भी उसी वातावरण में रहते हैं। मुझे भी आधुनिक प्रगति के प्रति मोह है, लगाव है और उन्हें भी। इसके अलावा मुझ में जितना बचपन है प्रायः उतना ही दूसरों में है। वे मेरे जैसे ही तो कपड़े पहनते हैं। बाल संवारते हैं। प्रगतिवाद की चर्चा करते हैं। फिर मुझे भी एक दिन मरना है और उन्हें भी। अब अपनी कमजोरी अवगुण छुपाने के लिए दाँव-बचाव करते दिखाई देते हैं। एक झूठा आडम्बर का पर्दा डालकर। फिर 'राकेश' ने मुझे ही "व्यथित" क्यों कहा? हालांकि मैंने अपना दर्द हृदय के एक कोने में ही छुपाके रखा है उसकी अनुभूति केवल मुझे ही है। मैंने आजतक किसी के सम्मुख अपनी कमजोरी अपनी बेबसी पर से पर्दा नहीं उठाया है। चुपचाप अपने भीतर की पीड़ा का दर्द सहन करता आ रहा हूँ। न आह भरता हूँ न चीखता हूँ और न ही आँसू छलकाता हूँ।

राकेश ने मेरे जीवन में कौनसी अनियमितता देखी? कब मेरे हाव विषाद के संकेत देखे और कब मेरे मुख पे आँसू बहते देखे। मैं ठीक समय पर अपनी ड्यूटी पर जाता हूँ अपना कर्तव्य समझकर कार्य करता हूँ। कालेज में हर विद्यार्थी से आत्मीयता से पेश आता हूँ क्लास लेने के पूर्व लेसन की तैयारी करता हूँ। राह चलता हूँ तो हर औरत को देखकर अपनी पलकें झुका लेता हूँ। केवल अपने आप को सुशिक्षित सभ्य और समाज का स्तम्भ मानकर ही नहीं बल्कि मेरे व्यथित होने का ज्ञान किसी को न हो।

फिर उसने कैसे कह दिया? उसने मेरी दर्द भरी तारों को क्यों छेड़ा। अब मेरे मन में उन तारों को लय में लाने के लिए उचित कहाँ है। मैं तो किसी की याद भुला चुका हूँ। उसे भूलने का प्रयत्न कर रहा हूँ। एक नये जीवन की ओर अग्रसर होना चाहता हूँ। मुझे किसी से कोई शिकवा-शिकायत नहीं है। है तो केवल अपने आप से। कब मैंने किसी के सम्मुख जाकर अपना दुखड़ा रोया है। कब मैंने किसी से दया की भीख

माँगी है। मैंने कब इस दुःख का हिस्सा बाँटने के लिए प्रयत्न किया है। फिर यह मित्र कहलाने वाले कृत्रिम सहानुभूति प्रदर्शित करने वाले मेरी भावनाओं से खिलवाड़ क्यों करते हैं ? मैंने इनका क्या बिगाड़ा है। क्यों मुझे उस घटना की याद दिलाकर इस शान्त रात्रि में जगाये रखते हैं ? जबकि सारे गहरी निद्रा में सोते रहते हैं और मैं तारे गिनता रहता हूँ। मैंने अभी तक किसी के साथ कोई दुराव नहीं किया। किसी के दिल को ठेस नहीं पहुँचाई। मैंने कुसुम का भी कोई अनर्थ नहीं किया। मैं तो हमेशा उस पर अटूट विश्वास ही करता आया था। उसने ही मुझे लिखा "मेरी पढ़ने की बहुत इच्छा है। मेरे पिताजी अकेले हैं। बूढ़े हैं। रुग्ण रहते हैं। जीवन में सेक्स ही तो सब कुछ नहीं है। एक कर्त्तव्य भी है। एक ममत्व भी है और अपनापन भी कुछ मायने रखता है। अतः आप मेरी मजबूरी को उसे दिमाग से सोचकर कुछ अर्सा और अकेले में व्यतीत करलो। मेरे पिताजी अब अधिक जिन्दा नहीं रह सकते। उस दौरान में मेरी पढ़ाई की इच्छा भी पूरी हो जावेगी। कर्त्तव्य और ममत्व से भी जी भर जावेगा। फिर आप हैं मैं हूँ और सेक्स।"

उस पत्र के बाद मैंने कुछ अर्से तक और अकेले रहने के लिए दृढ़ संकल्प कर लिया था। मैं तो जीवन में हमेशा अकेला ही रहता आया था। बचपन में ही माँ की छाया उठ गई थी। पिता ने शहर के एक कोने की बोर्डिंग में मुझे दाखिल करा दिया था। वे माह में एक दो बार आकर मेरा हाल पूछ जाते थे। मैट्रिक पास करने के पश्चात् उनका भी देहान्त हो गया और आगे की पढ़ाई के लिए कुसुम के पिता ने मेरी मदद की थी। एक अनाथ समझकर, अपने दोस्त का पुत्र समझकर फिर उन्होंने मेरी तीव्र बुद्धि के कारण और एक ही जाति का होने के कारण, अपनी इकलौती बेटी की शादी भी मेरे साथ कर दी। और मैं उनके अहसानों से दबा जा रहा था। कुछ बोल भी नहीं सकता था कुछ कह भी नहीं सकता था। फिर उन्हें व्यापार के सिलसिले में यह नगर छोड़कर जाना पड़ा। और मैं सरकारी नौकरी की [illegible]

पड़ा रहा अकेला। एकान्त जीवन बिताना तो मेरा जन्मजन्मान्तर से चला आ ही रहा है। कुसुम के पत्र ने मेरे हृदय में सहृदयता की जगह महसूस की। वह मेरे और समीप आ गई। क्योंकि उसने अपने त्याग और अपनी भावनाओं की तस्वीर मेरे सम्मुख रखी। मैं इतना पत्थर दिल थोड़े ही था कि किसी की भावनाओं को पैरों तले कुचल दूं। मैंने तो उस वक्त अपने आपको भाग्यशाली माना था कि मैं एक ऐसी औरत का पति हूँ जो सुन्दर ही नहीं बल्कि सुशिक्षित भी है। उसका हृदय पत्थर नहीं है। एक मोम के समान ही है। हालांकि उस वक्त मेरे दिमाग में यह भी विचार उठे थे कि 'सुन्दर औरत जीवन में प्यार के लिए प्यासी भटकती है। वह अपनी सुन्दरता के घमंड के कारण प्यार की प्यास तृप्त करने में असमर्थ रहती है। यह केवल वेदना ही देता।' मेरा यह सोचना उस रोज उचित था ?

लेकिन एक बात अभी तक मेरे मन और मस्तिष्क को कोंचती है। यह क्या ? वह पढ़ी लिखी थी। आज के एटीकेट और बदलते हुए नियमों से अवगत थी। माना। मैं जिस शहर में रहता हूँ, वहाँ ट्रैफिक की भीड़ नहीं है। बसों और ट्रामों की कतार दिखाई नहीं देती है। रोजाना की बदलती हुई फैशन नहीं। आमोद-प्रमोद के इतने साधन नहीं। लेकिन जिस शहर में कुसुम रहती थी वहाँ यह सब तो था। अगर उसको इन्हीं वस्तुओं से प्यार था तो मैं क्यों बीमार बना था ? जिस परिस्थिति में ब्याही हुई थी, वह स्थिति बाद में तो उसके सामने नहीं रही। वह अगर केवल मुझे इतना ही लिख देती कि अपनी शादी एक मजबूरी की अवस्था में ही हुई थी। उस समय मैं नाबालिग थी। जिसके फलस्वरूप दो हृदय आपस में एक नहीं सकते। मैं सच्चे दिल से कहता हूँ कि मुझे कोई ठेस नहीं लगती किसी प्रकार की आपत्ति भी नहीं होती और मैं तलाक नियम पालन करने में कोई हिचकिचाहट नहीं करता।

काश ! यह घड़ी नहीं आती। काश ! मैं अचानक इन्टरव्यू के लिए

नहीं जाता। अगर जाता भी गया तो कम से कम दोस्तों के साथ उस होटल में नहीं ठहरता। लेकिन सब अपने आप हुआ होनी के फलस्वरूप। मैं मान गया कि मनुष्य कुछ नहीं करता। कुछ काम स्वतः ही भी हो जाया करते हैं। काश ! जीवन का पर्दाफाश इस प्रकार नहीं होता। काश ! मुझे उच्च पद प्राप्त करने का मोह नहीं होता। लेकिन उस दिन जीवन में सब बातें पहली बार ही हुई थी। वह भी इस प्रकार।

मैंने जीवन में कभी शराब छुआ तक नहीं था। लेकिन उस रोज दोस्तों के प्रभाव में आ ही गया। मैं तो नारी को एक श्रद्धा की मूर्ति और देवी मानकर चलता था। हालांकि मेरे पास लड़कियों के ट्यूशन भी कई बार आये थे। लेकिन मैंने नहीं किये। यह मानकर कि मन पापी होता है। मैल की पर्त जमते देर नहीं लगती है। मेरे चरित्र की अमिट छाप जो कॉलेज मोहल्ले और साथियों पर छाई हुई है, कहीं धूमिल न हो जाये कोई दूर बैठी मुझे अपना समझती है उसके साथ धोखा नहीं कर बैठूं। उस कुसुम के साथ जब मैं गर्मी की छुट्टियाँ व्यतीत करने हेतु उसके पास जाता। वह वस्तुतः मुझसे एक क्षण भी दूर नहीं होती थी। मुझे भिन्न-भिन्न प्रकार के पकवान अपने हाथों से बनाकर खिलाती। मेरे लिए कीमती कपड़े लाती। जब मैं उस स्थान से चलता उस वक्त कुसुम के आँसू रुकते तक नहीं थे।

जब होटल मैनेजर ने लाकर एलबम हमलोगों के सम्मुख रखी उस वक्त मैं किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो गया था। मैं यह सोच भी नहीं सकता था। मेरे साथियों ने एलबम देखकर फौरन अपनी इच्छाएँ प्रकट कर दी थी। और मैं एक अजीब उलझन में खो गया था। फिर यह सोच कर एलबम देखने लगा कि कम से कम एक नजर तो दौड़ाऊं। पवित्र कार्यों की भाँति देखकर लौटा दूंगा। उफ ! यह सोचना मेरे लिए कितना घातक सिद्ध हुआ अन्यथा आज ऐसा दिन नहीं आता। मेरे और कुसुम के बीच पर्दा पड़ा ही रहता तो वह अच्छा ही था। क्योंकि उस ऐलबम की औरतें भी किसी की बीबियाँ अवश्य होंगी उनका भी घर होगा, पति

हूँगे। और उनके पत्नियों और उनके बीच पर्दा होगा। उस पर्दे की ओट में उनका जीवन निर्बाध गति से चलता रहा होगा, वे व्यक्ति भी तो मेरे ही तरह होंगे। उनका भी तो हृदय होगा स्वाभिमान होगा। अपनी बीवी के प्रति विश्वास होगा। फिर मैंने जान बूझ कर यह सब क्यों किया।

मैं अगर महान् होता तो अवश्य ऐसा काम हाथ में थामता ही नहीं। और यह सोचता भी नहीं। क्या? जीवन क्या है? मुक्ति क्या है? बड़े पहर क्या है? जीवन की अनुभूति कैसे प्राप्त होती है? हाँ यह सब प्रश्न मेरे दकियानूसी विचारों के द्योतक ही थे। मैं स्वयं उसी दिन गिर चुका था। जिस चरित्र का मुझे गर्व था। वह उसी वक्त, चन्द क्षणों में बह गया था। फिर मुझे कुसुम की तस्वीर देखकर क्यों रोष पैदा हुआ? दिल को एक ठेस सी क्यों लगी? थोड़ी देर के लिए आँखों का प्रकाश क्यों लुप्त हुआ। सिर क्यों चकराने लगा? मैंने अपनी दोनों आँखें मलकर, अपने का नशा होना महसूस क्यों किया? यह स्पष्ट नहीं था। क्योंकि मैंने एक हाथ से चुटकी भरी कि मैं होश हवास में हूँ अथवा नहीं। क्या मैंने यह जानबूझकर नहीं किया था। फिर मैं जो अपने आप को चरित्रवान मानकर चलने वाला हर औरत को श्रद्धामयी और देवी समझने वाला कुसुम को बुलाने के लिए कह दिया। केवल यह मानकर कि सच्चाई थोड़ी देर में सामने आजायगी। झूठा प्यार, मेरे से क्षमा की भीख मांगगा। ममत्व और स्निग्ध गिड़गिड़ायेगी। और मैं उस दर-दर की ठोकरें खाने के लिए दुत्कार दूंगा। क्योंकि मैं महान् हूँ। मेरे मे चरित्र की अमिट छाप है।

यह काली रात! और यह आलीशान होटल! और उस ट्यूब लाइटों का प्रकाश मेरे जीवन का अभिशाप बन रहा था। एक तरफ पदोन्नति की लालसा और दूसरी तरफ जीवन का कड़वा घूंट! हथेली में खींची भाग्य रेखा और ज्योतिष का पत्रावेश यह सब विगत घटनाएं मेरे दिल में हलचल मचाने लगीं। मुझे अब नहीं महसूस होने लगा था कि यह ज्योतिष आदि

मौगामक थे। एक धोखा एक अन्धविश्वास था। इसान को कमजोर और बुजदिल बनाने के साथ हैं।

एक तरफ सिगरेट बल रही थी और दूसरी तरफ मेरा दिल। एक टैक्सी आकर होटल के आगे खड़ी हुई। मैंने उठकर देखा-वही अबला इस रात्रि में अपनी मर्यादा व ममत्व को छोड़कर होटल में घुसी। और इस वक्त मैंने उठकर जीवन का पहला ड्रामा खेलना शुरू किया जिसकी रिहर्सल मैंने पहले कभी नहीं की थी। मैंने लाइट आफ करदी। और पलंग पर रजाई में अपना मुंह छुपा लिया। बोतल को पलंग के पास इस प्रकार रख दिया कि आगुन्तक यह समझे कि नशा छाया हुआ है।

वह अन्दर घुसी। लाइट जलाई। जैसे हमेशा ऐसा ही करती हो। एक स्थायी सदस्य की भाँति। यह सब मेरे लिए यथेष्ठ प्रमाण थे। और फिर वह मेरे पलंग के पास आई और बोली "अकेले ही पी गये। इन्तजार तक नहीं किया।

इस कातिल पहचानी आवाज ने मेरी रही सही धैर्य शक्ति पर कुठार घा ला दिया। और खून उबल पड़ा। झटके से रजाई दूर फेंक दी। और कुसुम मुझे देख मूर्ति सी बन गई। उसका चेहरा पीला पड़ गया शरीर में कंपकंपी होने लगी। मादकता भरा चेहरा चन्द क्षणों में मुर्झा गया। मानो (जैसे रक्त जम गया हो धड़कनें बन्द हो गई हों अथवा शैतान के हाथों में पड़ कर निर्जीव सी हो गई हो।

और मैंने ऐलबम पर अंकित रक्ख उसके हाथों में थाम दी बिना कुछ कहे एक जहर का घूंट पीकर। यह मेरी सहन शक्ति थी या कुसुम की। वह बिना कुछ कहे-सुने मसमिव्यथि से लौट गई और मैं बिस्तर परपड़ा-पड़ा आत्म-हत्या करने का ख्याल लेने लगा। जीवन में अब क्या शेष रह गया। अब कौन मनोन्नति की इच्छा कर सकता था। जिस्म के सारे स्नायु बर्फ के समान जम गये थे। वह दिन कितना भयंकर और मार्मिक पीड़ा पहुँचाने वाला था। केवल मैं जानता हूं मेरा दिल जानता

है, जिसका मान और किसी को भी नहीं है और न भविष्य में किसी को होगा।

लेकिन वही कुसुम आज भी मेरी नजरों से गिरी नहीं है। मैं उसे अब भी चाहता हूँ। अब भी मेरा हृदय उसके बिना सूना है, प्यासा है और उसके लिए तड़पता है। आखिर क्यों?

उस दिन की रात्रि एक अजीब मनःस्थिति में गुजारी। सुबह दफ्तर में नहीं गया बल्कि कुसुम के घर ही गया और देखा उसके घर में कुहराम मचा हुआ है, उसका बूढ़ा पिता रो रहा है। और वह शान्त चिर निद्रा में सोई हुई है। उसके बूढ़े पिता ने मुझे एक बन्द लिफाफा दिया। उस पर मोटे अक्षरों में लिखा था कि इसे केवल कमलेश ही पढ़े। वह पत्र इस प्रकार था—

मेरे देवता!

जीवन क्या है? केवल एक खिलौना। ममत्व क्या है? एक खून का रिश्ता। प्रेम क्या? एक आन्तरिक बन्धन जिसे प्रकट नहीं किया जाता है केवल मन मन्दिर में सुरक्षित रखकर पूजा की जाती है। लेकिन मजबूरी एक बहुत बड़ी चीज है। मेरी भी कुछ मजबूरियाँ थीं। जिनके वश में होकर मैं मुँह खोल नहीं सकती थी। कुछ कर भी नहीं सकती थी। केवल विश्वासघात पर विश्वासघात ही करती जा रही थी। तुम तुम समझते थे कि मैं एक धनाढ्य बाप की इकलौती बेटी थी। आम व्यक्ति इसी धोखे में हमें देखते थे। और हम भी इस पर्दे को हटाना पसन्द नहीं करते थे। क्योंकि इसके आदी बन गये थे। स्वाभिमान मर चुका था। पिता जी ने काफी धन अर्जन किया था। मैं उस धन से इतनी अन्धी होकर आगे बढ़ रही थी कि पीछे मुड़कर देखना गवारा नहीं होता था। कीमती शराब पीने लगी थी। उसके बिना दिन भर कुछ कर ही नहीं सकती। परिस्थितियों ने पलटा खाया। मेरे पिता जी धनवान से कंगाल एक रात में ही हो गये। मेरी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। एक दिन मेरी एक सहेली इस होटल में मुझे ले गई और फिर मैं इस रास्ते

की मुसाफिर बनने लगी। लेकिन जब आपका ध्यान आता- उस वक्त बदन में आग सुलगने लगती। मैं सोचती एक पवित्र व्यक्ति के साथ कितना बड़ा धोखा और फरेब हो रहा है। वह मुझे अपने जीवन का साथी समझता है। और मैं अपने आप से पूछती कि 'कुसुम' क्या तुम औरत हो? नारी हो? अर्धांगिनी हो? मातृ हृदय को क्यों कालिमा लगा रही हो? उस वक्त मैं अपने आप से झुंझला उठती और कहती मैं सब कुछ हूं। मेरा जिस्म कमलेश के लिए कुंवारा नहीं रहा लेकिन आत्मा अब भी उसी के लिए ही है, जो उससे अलग नहीं हो सकता है। जिस्म मस्मासात हो सकता है। लेकिन आत्मा नहीं। इस जीवन में न सही दूसरे जन्म में भी मेरी आत्मा उसके लिए ही है।

इसके अलावा मैं यह भी जानती थी कि एक रोज असलियत सामने अवश्य आवेगी चूंकि पाप प्रकट हुए बिना नहीं रह सकता। मने बहुत पूर्व निश्चय कर लिया था कि मैं सबकी नजरों स गिर सकती हूं लेकिन आपकी नजरों स गिरना नहीं चाहती जब वह घड़ी आवेगी। उस रोज कुसुम नहीं रहेगी। वह घड़ी आ गई। मुझे केवल इतना ही है कि मैं उसी वक्त क्यों नही मरी। शायद इस पत्र लिखने के लिए ही ऐसा हुआ।

मेरे आराध्यदेव मैंने तुम्हारे साथ धोखा और कपट अवश्य किया। लेकिन मन से नहीं। हृदय में केवल तुम्हारी मूर्ति ही रही। केवल जिस्म का विक्रय हुआ लेकिन आत्मा का नहीं। अब मैंने उस पाप का दण्ड भुगत लिया है। मुझे माफ कर देना। अन्यथा मेरी आत्मा को कहीं शांति नहीं मिलेगी। मेरे प्यारे कमलेश यही मेरी अन्तिम इच्छा है। यही मेरे लिए गंगाजल है और यही भागवत व गीता है। माफ करोगे न?

कुसुम

इस घटना को अब तक मैंने कब किसी के सम्मुख प्रकट किया। अब मैंने कुसुम के बारे में कहानी सुनाई। मैं तो केवल दिन भर अपने ही कार्यों में व्यस्त होकर अपना जीवन हवा कर रहा हूं। अवसर अपने

है जिसका ज्ञान और किसी को भी नहीं है और न भविष्य में किसी को होगा।

लेकिन वही कुसुम आज भी मेरी नजरों से गिरी नहीं है। मैं उसे अब भी चाहता हूं। अब भी मेरा हृदय उसके बिना सूना है, प्यासा है और उसके लिए तड़पता है। आखिर क्यों ?

उस दिन की रात्रि एक अजीब मनःस्थिति में गुजारी। सुबह रेस्टरां में नहीं गया बल्कि कुसुम के घर ही गया और देखा उसके घर में कुहराम मचा हुआ है उसका बूढ़ा पिता रो रहा है। और वह शान्त, चिर निद्रा में सोई हुई है। उसके बूढ़े पिता ने मुझे एक पत्र लिफाफा दिया। उस पर मोटे अक्षरों में लिखा था कि इसे केवल कमलेश ही पढ़े। वह पत्र इस प्रकार था—

मेरे देवता !

जीवन क्या है ? केवल एक खिलौना। ममत्व क्या है ? एक खून का रिश्ता। प्रेम क्या ? एक आन्तरिक बन्धन जिसे प्रकट नहीं किया जाता है केवल मन मन्दिर में सुरक्षित रखकर पूजा की जाती है। लेकिन मजबूरी एक बहुत बड़ी चीज है। मेरी भी कुछ मजबूरियाँ थी। जिनके वश में होकर मैं मुंह खोल नहीं सकती थी। कुछ कर भी नहीं सकती थी। केवल विश्वासघात पर विश्वासघात ही करती जा रही थी। तुम तुम समझते थे कि मैं एक धनाढ्य बाप की दुलारी बेटी थी। आम व्यक्ति इसी धोखे में हमें देखते थे। और हम भी इस पर्दे को हटाना पसन्द नहीं करते थे। क्योंकि इसके आदी बन गये थे। स्वाभिमान मर चुका था। पिता जी ने काफी धन अर्जन किया था। मैं उस धन से इतनी अन्धी होकर आगे बढ़ रही थी कि पीछे मुड़कर देखना गवारा नहीं होता था। कीमती शराब पीने लगी थी। उसके बिना दिन भर कुछ कर ही नहीं सकती। परिस्थितियों ने पलटा खाया। मेरे पिताजी धनवान से कंगाल एक रात में ही हो गये। मेरी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। एक दिन मेरी एक सहेली इस होटल में मुझे ले गई और फिर मैं इस रास्ते

की मुसाफिर बनने लगी। लेकिन जब आपका ध्यान आता उस वक्त बदन में शूल चुभने लगती। मैं सोचती एक पवित्र व्यक्ति के साथ कितना बड़ा धोखा और फरेब हो रहा है। वह मुझे अपने जीवन का साथी समझता है। और मैं अपने आप से पूछती कि 'कुसुम' क्या तुम औरत हो? नारी हो? अर्धांगिनी हो? नारी हृदय को क्यों कालिमा लगा रही हो? उस वक्त मैं अपने आप से झुंझला उठती और कहती मैं बन चुकी हूं। मेरा जिस्म कमलेश के लिए कुंवारा नहीं रहा लेकिन आत्मा अब भी उसी के लिए ही है, जो उससे अलग नहीं हो सकता है। जिस्म अस्वास्थ हो सकता है। लेकिन आत्मा नहीं। इस जीवन में न सही दूसरे जन्म में भी मेरी आत्मा उसके लिए ही है।

इसके अलावा मैं यह भी जानती थी कि एक रोज वास्तविकता सामने अवश्य आयेगी चूंकि पाप प्रकट हुए बिना नहीं रह सकता। मैंने बहुत पूर्व निश्चय कर लिया था कि मैं सबकी नजरों से गिर सकती हूं लेकिन आपकी नजरों से गिरना नहीं चाहती जब वह घड़ी आयेगी। उस रोज कुसुम नहीं रहेगी। वह घड़ी आ गई। मुझे केवल इतना ही है कि मैं उसी वक्त क्यों नहीं मरी। शायद इस पत्र लिखने के लिए ही ऐसा हुआ।

मेरे प्राणप्रिय मैंने तुम्हारे साथ धोखा और कपट अवश्य किया। लेकिन मन से नहीं। हृदय में केवल तुम्हारी मूर्ति हो रही। केवल जिस्म का विक्रय हुआ लेकिन आत्मा का नहीं। अब मैंने उस पाप का दण्ड भुगत लिया है। मुझे माफ कर देना। अन्यथा मेरी आत्मा को कहीं शांति नहीं मिलेगी। मेरे प्यारे कमलेश यही मेरी अन्तिम इच्छा है। यही मेरे लिए गंगाजल है और यही भागवत व गीता है। माफ करोगे न?

कुसुम

इस घटना को अब तक मैंने न किसी के सम्मुख प्रकट किया। अब मैंने कुसुम के बारे में कहानी सुनाई। मैं तो केवल दिन भर अपने ही कार्यों में व्यस्त होकर अपना जीवन पूरा कर रहा हूं। मगर अपने

बाकी रात्रि का क्रम नींद की गोली लेकर घूमता हूँ। और इसके अतिरिक्त भी जब कभी सो नहीं पाता हूँ तो उस वक्त अपने आप से द्वन्द्व करता हूँ। कुसुम का पत्र पढ़ता हूँ यह सोचकर कि क्यों न एक उपन्यास लिख दूं। ताकि इस व्याकुलता से कुछ तो छुटकारा मिले। साथ-साथ मन में उठे हुए अंकुर भी प्रस्फुटित होकर मेरी आँखों के सम्मुख एक पुस्तक का रूप धारण कर हमेशा हमेशा के लिए अमर हो जावे।

कुसुम अपराध तुम्हारा नहीं है। अपराध मेरा है। मेरे जैसे मानवों का है। हीन मनोवृत्ति का है। झूठी मान मर्यादा का है। क्षणिक प्रमादी जीवन का है। और अपनी अपनी हस्त रेखाओं का है। एक सीधी है, एक टूटी हुई है किसी पर द्वीप है तो किसी पर क्रॉस है। यथार्थ में अपने भाग्य का ही है।

लेकिन इन सब बातों की राकेश को कब थाह मिली फिर उसने मुझे क्यों कहा कि तुम ऐफेक्शनेटएड व्यक्ति हो ?

●

●विना दीवान

तीन साये काँपते

छत से झांकती धूप धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतरती चली आती है। सांझ की लाली देख जिसके काले साये सी रात दौड़ी आती है। मुंडेर पर बैठे कौवे कांव-कांव करते हुए वापिस लौट जाते हैं। रात गहराती जाती है।

मुन्नी लौट आयी है। उसके सैंडिलों की खट-खट दालान में गूंज रही है। मैं हाथों को तेजी से चलाना आरम्भ कर देती हूं। स्टोव की सूं-सूं और बर्तनों की खट-खट तेज हो जाती है। चम्मी से निकलती भाप देखकर मैं मनचाही हंसी हंस देती हूं।

"भाभी भैया आ गए ?" मुन्नी रसोईघर के दरवाजे पर आकर पूछती है। मैं तेजी से आटे में हाथ मारने लगती हूं। मुन्नी अपने प्रश्न के उत्तर से अनजानी रसोई की धुंए से भरी छत को ताकने लगती है। फिर बैठ जाती है। अचानक चम्मच उठा कर थाली से टकराना शुरू कर देती है। मैं उसकी तरफ देखने लगती हूं। वह मुझे घूरता देख चौंकती है और थाली चम्मच से परे रख देती है।

भाभी तुम्हारी तबियत अब कैसी है ? वह कुछ-न-कुछ कहना चाहती है।

'ठीक है।

"अच्छा। अनमयस्क सी उठ कर वह मुड़ कर अपने कमरे की तरफ चल देती है। मैं स्टोव के पम्प पर हाथ रखे देखती रहती हूं। धीरे-धीरे उसकी [illegible]

मुन्नी भी अब गम्भीर होती जा रही है मैं सोचती हूं। रात गहरी हो रही है। मैं उठकर लाईट जला देती हूं। मन्द पीली-पीली रोशनी रसोईघर की कालोंस में घुलकर अजीब-सी लगती है। आले झुर्रियों से चमकते हैं। एक बार उठकर बत्ती बुझा देने की इच्छा होती है, लेकिन कुछ सोचकर वापिस बैठ जाती हूं। मुन्नी कपड़े बदल कर वापिस आ जाती है। उसे रसोई घर की चौखट पर बैठी देखकर मैं अनायास ही कह उठती हूं— चौखट पर कर्जदार आकर बैठते हैं।

'सच भाभी। बोलो देओगी कर्जा ? हम दोनों हंसने लगती हैं। पर हंसी खोखली सी लगती है। चुप्पी छा जाती है। हम दोनों एक दूसरे का मुंह देखती हैं। मुन्नी दृष्टि फेर कर नीचे अंगूठे से कुछ कुरेदने लगती है। नीचे देखते ही कहती है—

'भाभी अम्मा तो दो दिन में आने को कह गये थे। आज चार हफ्ते हो गये हैं।"

'उनका तार आया था न कि वह बीमार हैं। मैं उत्तर देती हूं ये जानकर भी कि ये सब मुन्नी को पता है।

"चाय पी ली तुमने ?"

मैं चुपचाप पतीली में पानी डालकर सब्जी उतार कर उसे ऊपर रख देती हूं।

'लेकिन सिर्फ मेरे लिए ही तो कोई ऐसी खास जरूरत नहीं थी।

मैं उत्तर न देकर पानी खौलने का इन्तजार करती हूं।

भाभी कुछ पैसे हैं शायद मुझे कल फीस भी जानी पड़े।"

हां दूध वाला और पंसारी भी पैसे मांग रहे थे।"

मुन्नी उठकर चली जाती है। मैं सोचती हूं इन चार सप्ताहों में हम कितनी अपरिचित हो गई हैं। आज दस साल से मेरी गोद में खेली मुन्नी कभी इतनी अपरिचित नहीं रही। उसे मैं बिल्कुल अपनी बच्ची सी समझती आई हूं। शायद अपनी अतृप्ति पूर्ण करने के लिए। नरेश सदा से सिर्फ एक बच्चे की मांग करता रहा वह पूरी न हो सकी तो

वह मुन्नी को ही बच्चा बनाये हैं।

खाँसते बाबूजी अन्दर आतेहैं। मुन्नी पूछती है। 'बाबूजी आ गये आप ?

"हाँ। बेटी नरेश का कोई पत्र आया बहू ? फिर वे स्वयं ही कहते —'अरे चिन्ता न कर उसे पत्र लिखने की आदत ही कम है।

मैं सोचती हूँ इन भुलावों की कितनी जरूरत है जीने के लिए। नरेश की आदत थी कि वह हफ्ते में दो पत्र मुझे लिखा करता था। मैं खाना लगा देती हूँ। मुन्नी और बाबूजी चुपचाप खाना खा लेते हैं। बाबूजी ऊपर चले जाते हैं उन्हें सिगरेट की तलब होगी। मेरे सामने सिगरेट नहीं पीते। मुन्नी भी अपने कमरे में चली जाती है। अब मुझमें इतनी हिम्मत नहीं रहती कि चौका-बर्तन साफ करूँ। बर्तन इकट्ठे करके रख देती हूँ। लाइट बुझाकर रसोई की साँकल चढ़ाकर बाहर आ बैठती हूँ। मुन्नी भी अपनी खाट पर पड़ी है। मैं पूछती हूँ 'क्यों मुन्नी सो गई ? "हाँ भाभी। और वह करवट बदल लेती है।

मैं उठकर बरामदे की बत्ती बुझा देती हूँ। खाट पर लेट कर जोर की साँस खींचने पर कुछ राहत मिलती है। लगता है जैसे शरीर का बोझ कलता जा रहा है। कुछ देर इसी स्थिति में आँखें मींचे पड़ी रहती हूँ। फिर आँखें खोलकर सामने की दीवार पर गाड़ देती हूँ। अंधेरा बिखरता आता है। मैं और ज्यादा आँखें खोलने की कोशिश करती हूँ और दर्दी से जाते हैं कुछ धमियाला सा घिरने लगता है। अनजाने ही पास में नरेश को खोजती हूँ। अँगुली की पोरवे में चारपाई की रस्सी का काँटा गड़ जाता है। पीड़ा सी होती है। कुछ अजीब सा पोरवों में रह गया है दर्द को दबाने की कोशिश में आँखों से पानी की धार कान तक खिच जाती है। ऊपर सोये बाबूजी के खर्राटों की आवाज गूँजती है। I फिर करवट बदलती हूँ। कण्ठ सूखा-सूखा-सा लगता है। पानी पीने ी इच्छा दबा जाती हूँ। सीने में कुछ उमड़ने सा लगता है दोनों हाथ ीने पर रख लेती हूँ। हाथ के दबाव से कुछ राहत मिलती है और

जोर से दबाती हूँ। सोने की कोशिश करने पर भी आँखें और खुलती जाती हैं।

और पड़ता जाता है। अंधेरा बढ़ने लगता है। हल्की-हल्की हवा चलने लगती है। नीम के सूखे पत्ते नीचे गिर कर आँगन में खड़-खड़ करते चले जाते हैं। अंधेरा घुलकर ओस बनता जा रहा है। नरेश की याद और अधिक आती है उसके किसी अनर्थ की कल्पना करते-करते रोम रोम से पसीना छूट पड़ता है। चादर से पसीना पोंछ कर गड़मड़ सी चादर में घुस जाती हूँ। चादर के अन्दर नीचे पीले आग से उतरते बादल तिरते हैं अचानक नरेश एक जहाज में बैठा जाता है मैं उसे रोकने आगे बढ़ती हूँ उससे पहले ही जहाज फट जाता है नरेश के टुकड़े-टुकड़े होकर आकाश में बिखर जाते हैं। मैं पसीने से भीग जाती हूँ गला सूखता जाता है। हिम्मत करके पानी पीने उठती हूँ पाँव लड़खड़ाने से लगते हैं। मैं फिर बैठ जाती हूँ। कोशिश करके अपने को धकेलती-सी मटके तक पहुँचती हूँ। हाथ से मटके का ढक्कन छूट पड़ता है रात के सन्नाटे में उसकी आवाज गूँज जाती है। मुझे अपने चारों तरफ साये नाचते नजर आते हैं। वातावरण जैसे गला दबोचने दौड़ता है मैं जल्दी से पानी हलक में उतार लेती हूँ एड़ी तक ठण्डक-सी पहुँच जाती है। मैं जल्दी से एक गिलास और हलक से नीचे उतार लेती हूँ। अच्छा लगता है। अचानक वहीं आँखें बन्द करके खड़े होने की इच्छा होती है पर असफल रहती हूँ। वापिस लौटकर खाट पर पड़ जाती हूँ। जबरदस्ती आँखें मींचती हूँ।

नरेश का तार आया है वह एक आकस्मिक चीज ला रहा है। मेरे लिए। गाड़ी पहुँचने तक परेशान रहती हूँ। नरेश को एक डिब्बे से उतरता देख जल्दी से आ पहुँचती हूँ नरेश मुझे देखकर भी अनदेखा कर देता है और डिब्बे से एक सुन्दर स्त्री को सहारा देकर उतारता है।

"नरेश! ये क्या" ? मैं चीखती हूँ।

"मीट माई वाइफ सुनीता। ये हैं मेरी रिलेटिव सुरमा। मैं

आश्चर्य स्तम्भित खड़ी रहती हूँ।

'जो आदमी को बच्चा न दे सके वह औरत सिर्फ उसकी रिलेटिव हो सकती है सिर्फ रिश्तेदार। वह कहती है। मैं गश खाकर गिर पड़ती हूँ कानों में गूंजता है' वह औरत सिर्फ रिश्तेदार ही हो सकती है सिर्फ रिश्तेदार।"

चौंककर जागती हूँ। देखती हूँ मेरा सिर नरेश की गोद में है और सुनीता गायब है। मैं अविश्वास से उसे खोजती हूँ और फिर नरेश को चिपक जाती हूँ।

क्यों क्या हुआ तुम्हें अचानक ? नरेश कहता है।

मैं उसकी बात काटकर सिसकने लगती हूँ और कहती जाती हूँ तुम मुझे छोड़कर न जाया करो। मत जाया करो मेरे प्रीतम। कहीं मत जाया करो।

फिर नींद उचट जाती है। आँखों से बहते आँसू बालों को भिगो रहे हैं मैं साड़ी के पल्लू से उन्हें पोंछ लेती हूँ। मेरा सिर खाट से नीचे लटका होता है। अब सोने की ताब नहीं रहती। नींद कोसों दूर भाग जाती है। रात गहरी कोयल-सी सोने से खिसकती जाती है। दूर सुबह का तारा चमकने लगता है।

बाबूजी के पैरों की आवाज सीढ़ियों में सुनकर व्यस्त होकर उठ जाती हूँ। मुन्नी को झकझोरती हूँ वह चौंक कर जाग जाती है पहले की तरह ही हूँ करके सोती नहीं।

मैं उस जरा स्टेशन देख आऊं। वैसे काफ़ी देरी हो गई है। बाबूजी लकड़ी सम्भालते कहते हैं। बाहर टाँगे के रुकने की आवाज आती है। मुझे सबसे पहला यही ख्याल आता है कि नरेश आ गया। मैं भागती हूँ दरवाजा खोल कर देखती हूँ तांगा आगे को चला जा रहा है। मुन्नी अन्दर कमरे की तरफ भाग लगती है। बाबूजी खांसते हुए बाहर निकल जाते हैं। सूरज फिर उगने के लिए ऊंचा चढ़ने लगता है।

१२

●रामू पटवा

चौराहा और परछाइयाँ

और घनी होती परछाइयाँ धीरे-धीरे कम होती गई। यह रात की काली चादर मेरे इर्द-गिर्द इतनी फैल चुकी है कि दूर क्षितिज तक कुछ भी नजर नहीं आ रहा है। मेरे करीब के फैलाव तक यह रात की काली चादर आधी फटी हुई सी लग रही है।

मेरे सीने पर कितनी आकृतियाँ उभरती जा रही हैं मिटती जा रही हैं मिलती जा रही हैं। मैं बेमन उन्हें देखता जा रहा हूँ। मन इतना भर गया है। इस कोलाहल से कि तन का यह बोझ कहीं गिरवी रख देना चाहता हूँ।

मेरी उम्र को कितना बुढ़ापा लग चुका है यह मैं नहीं जानता पर ये परछाइयाँ जो कई सालों से देख रहा हूँ मुझे अब परेशान कर जाती हैं। मेरे कोमल तन को कचोटती रहती हैं ये परछाइयाँ। रात भर मेरी थकी हुई आँखें इन परछाइयों को देखती हैं न चाह कर भी देखना पड़ता है कितना विवशता है मेरी।

यह मध्यम अमित जोड़ा अपनी कहानी मेरे वक्ष पर छोड़ता है मैं ऊब जाता हूँ कभी-कभी इनकी कहानियों से पर फिर भी सुनता हूँ— विवश जो हो जाता हूँ।

वह मन उनके कानों के टॉप्स को निहार रहा है। वह रहा है लक्ष्मी पूनम मिलमन से पूर्व इस टॉप्स को देखकर तुम परेशान हुई थीं। मैं शादी के बाद तुम्हें कुछ भी तो नहीं दे सका हूँ। किसी तरह बस के पैसे लक्ष्मी के पैसे बचाकर ये टॉप्स खरीद लिए और यह पहली भेंट

आज दस साल बाद मैं पाया है तुम्हें सन्नो ।"

यह सन्नो सहम कर रह गई है । आँखों की आद्रता को छिपाते हुए बोली है "आप　　आपने यह क्या किया । मैं यही पूछना चाहती थी आपसे । उस समय व्यस्तता में नहीं पूछने दिया लेकिन अब पूछ रही हूं　　।"

कैसी है ये परछाइयाँ जो मेरे लिये सारे दर्द को संजोये रखती है । मैं तो चाहता हूं कि अब चैन की साँस लूं पर ये परछाइयाँ ये आकृतियाँ जो मुझे सजीव सी लगती है न जाने क्यों मेरे पीछे हाथ धोकर लग गई है ? क्यों नहीं और कहीं होती है इनकी ये सब बातें ? मैं यही सोचता हूं कि तभी एक आवाज मुझे और सुनाई देती है । एक कार मेरे सीने पर आकर खड़ी हो गई है । ये तो दूसरी आकृतियाँ फिर मेरे सीने को पदाक्रांत करने के लिये इस कार से उतर रही है । यह नई युवती आज कार में कैसे ? इतनी रात को इस धनवान युवक के साथ क्यों है ?

मेरा ध्यान फिर सन्नो की तरफ चला गया "अपने को कष्ट देकर यह क्यों बचाया ? ठीक है कि नारी की इच्छा होती है जेवरों के प्रति । पर क्या मैं भी तुम्हें ऐसी ही लगी हूं ? मुझ से छिप कर ऐसा क्यों किया ? देखिये । आवश्यकता इनकी नहीं थी । बचाये ही ये तो दो माह का घर का किराया चुका"　　।

शराब की गन्ध ने मेरा ध्यान फिर सन्नो की बात से हटा दिया । मैं देख रहा हूं कि ये शराबी कहाँ से आ गये है । है यह दुर्गन्ध तो इन्हीं युवक-युवती की ओर से आ रही है । तो क्या यह युवती वैश्या है ? ऊपर से बिल्कुल शरीफ लग रही है । इसका चेहरा इतना खिला हुआ कैसे है । गालों पर लगा क्रीम और पाउडर छोटे-मोटे धब्बों में परिवर्तित हो गया है ।

शायद यह युवक कोई ऑफिसर है । यह क्या ? यह युवती तो इसको डाँट रही है मैं अब कभी नहीं कहूँगी कि मैं आपकी पत्नी हूँ ।

क्यों नहीं लेजाते अपनी उस काली कलूटी औरत को अपने साथ ? शायद मैं भ्रमवश ही सुन रहा हूँ ।

यह युवक खड़ा है चुप-सा पस्त-सा । उसके हाथ आगे बढ़ रहे हैं। युवती को अपनी बाँहों में लेना चाहता है और यह युवती कितनी भयानक लग रही है ? इसके हाथ उठे शायद गले में या युवक पर एक तमाचा जड़ देती पर युवक की जेब से निकलती सोने के नेकलस को देख हाथ रुक गया है । यह युवती नशे में भी कितनी सतर्क है अपने स्वार्थ के लिये ?

युवती के गले में नेकलस चमक रहा है और उसके होंठ युवक के होंठों के नीचे दब गये हैं । आह ! मैं नहीं देख सकता यह सब ।

मेरा मन फिर शम्मो की बात सुनने में लग जाता है"
घर का किराया चुक जाता । चाहे और रानी के कपड़े बन जाते । आप स्वयं भी तो यूं ही घूम रहे हैं एक पेन्ट और शर्ट में तो इन्हें खोल दीजिये ताकि पुराने न हों । वो आह बाद बाबू की फीस कैसी होगी कॉलेज में उन काम आयेंगे ।

मेरा मन भी कितना चंचल है । एक जगह टिकता ही नहीं । मैं फिर उस युवती की बात सुनने लग गया हूँ । 'यह नेकलस ~ । नहीं नहीं मैं नहीं लूँगी इसे । मेरे पास कोई अच्छे कपड़े नहीं हैं कि इस नेकलस को उन पर पहन सकूं । मेरी साड़ी फट गई है । स्कर्ट पुरानी हो गई है । आप रखिये इसे मुझे कपड़ों की आवश्यकता है ।

शराब की मदहोशी में युवक ने कोट की जेब में से पर्स निकाला और सौ-सौ के तीन नोट उस युवती के ब्लाउज में ठूस दिये । युवती फिर गिड़गिड़ाई न साबुन है 'न कंघा और न पाउडर, क्रीम भी नहीं"'। वास्तव में तुम्हें कितना परेशान कर लेती हूँ क्या" । और युवती उसके सीने से चिपट गई । युवक के हाथ फिर पर्स में गया और फिर कुछ रुपये निकाल कर दे दिये । शायद आज इस युवक को अपने ऑफिस से तनख्वाह मिली होगी । और मेरा ध्यान शम्मो पर की परेशानियों की ओर"

ओर चला गया। बेचारी इसकी पत्नी अब पूरा महीना कैसे निकालेगी? पैसे तो सारे यहीं समाप्त हो गये हैं। क्या हर महीने इसी तरह होता है? ओह—

युवक के होंठ फिर उस युवती के गालों पर इधर-उधर स्पर्श करने लगे।

मेरा मन यह स्वीकारने को तैयार नहीं है, पर ये बेहया युवक मेरी मजबूरी का फायदा उठा लेना चाहते हैं। मैं सोचता हूँ कि क्यों नहीं अपनी आँखें बन्द कर लूँ ताकि अन्धेरा छा जाये चारों ओर। ताकि फिर मैं नहीं देख सकूँ ऐसा कुछ भी।

पर मैं भी ऐसा मजबूर हूँ कि ऐसा हो नहीं पाता है। मैं फिर मन्नो की ओर ध्यान देता हूँ। मर्द कह रहा है 'सन्नो। यह मेरी पहली भेंट है। घर की समस्याओं से कसे हुए मजबूर पति की पहली भेंट। मैंने यह टॉप्स तुम्हें पहली बार अपने हाथों से पहनाये हैं? अब इन्हें बिकने नहीं दूँगा सन्नो।

और मध्यम वर्ग के ये दो प्राणी उठ गये हैं। मर्द भ्रमित-सा चल रहा है। राजू की फीस की चिन्ता को लेकर टॉप्स के न बिकने की इच्छा का लेकर।

मेरा मन फिर उदास हो जाता है। उदासी जैसे मुझे इस समय ने विरासत में दे दी है। मैं आँखें मूँद लेना चाहता हूँ। पर फिर आवाज आती है।

"स म　"न स　अ"　न।"

एक लड़का मेरे पास बैठा पैसे गिना रहा है। "एक दो पाँच सात "साठ और पचास एक रुपया दस आने पैसे।"　।

दिन भर की कमाई, यही भीख। लड़का खिलखिला कर हँस पड़ता "आज आठ आने बचत में डाल दूँगा", लड़का खड़ा होता है, अपनी फटी नीकर की जेब से एक पुरानी थैली-सा छोटी थैली निकालता है।

।। थैली आधी से अधिक भरी है। सारे पैसे मेरे तल पर बिखेर देता

है। इधर-उधर देखता है, फिर धीरे-धीरे गिनने लगता है। कुल पन्द्रह रुपये और आठ आने। संग्रह की प्रवृत्ति इस लड़के में भी है। भिखारी के इस छोटे को भी भविष्य के लिये संग्रहित करने की प्रतिक्रिया परिस्थितियों से मिलती है।

मैं सोच रहा हूँ कि लड़का यह सब क्यों कर रहा है कि तभी वह बोल पड़ता है "मज़ा आ जाये यदि एक साथी और मिल जाय। खूब पैसे कमा लूँगा फिर तो।" महत्वाकांक्षी है। महत्वाकांक्षा का उपयोग भीख के लिये हो रहा। मैं सोचता हूँ—क्या इसी तरह होता रहेगा।

लड़का अपने से ही बोलता है "और जब सौ रुपये हो जायेंगे तो एक हारमोनियम खरीद लूँगा। आज्ञा लोगों का खुश करूँगा पैसे कमाऊँगा तब मैं पैसे वाला"।

उस लड़के के चेहरे पर खुशी और उत्साह एक साथ नाचते हैं। लड़के की आँखें दूर सुन्दर से बंगले पर टिक गई हैं। मन की उमंग स्पष्ट-सी लगी कि वह भी बंगले वालों सा जीवन व्यतीत करना चाहता है।

वह लड़का प्रसन्न-सा लग रहा है। वह गाने लगा। गाता रहा कि तभी उसे पेड़ के पीछे से आवाज सुनाई दी। बारह साल की एक लड़की उससे कह रही है "मैं भी तुम्हारा साथ दे सकती हूँ। तुम गाओगे, मैं नाचूँगी।" वह भोली सुन्दर-सी लड़की उसके करीब आ गई। उसके कपड़े मैले थे उनमें जगह-जगह पैबन्दियाँ लगी थीं। वह एक ऊँचा सा ब्लाउज और घाघरा पहने थी।

लड़के की उत्कंठा गम्भीर बन गई। उसने कहा "तो अच्छा नाच दिखाओ। वह लड़की नाचने लगी। और लड़के ने फिर कहा "तुम्हें कमाई का चौथा हिस्सा मिलेगा।" मैंने देखा मनुष्यों में यह लड़का भी व्यापारिकता ला रहा है। उसके चेहरे पर चालाकी थी।

लड़की ने कहा "नहीं हिस्सेदारी बराबर होगी, मैं भी आधे पैसे लूँगी। लगा कि लड़की भी भीख माँगते-माँगते जिन्दगी की चालाकी

भाग गई है।

लड़के ने कहा "यह कैसे हो सकता है। तुम अभी पैसे लेने के तरीके नहीं जानती। अनजान हो। तुम्हें चौथाई हिस्सा ही मिल सकता है।"

लड़की राजी नहीं हुई। वह जाने लगी। लड़के ने अपने को सुधारते हुए कहा "ठहरो! तुम नहीं मानती तो आधा हिस्सा दे दूंगा।"

और मैं सोचता रह जाता हूँ कि ये लड़के-लड़कियाँ क्या इसी तरह भीख माँगने को जन्म लेती रहेंगी? क्या इसी तरह मैं जन्म भर ये चित्र देखता रहूँगा। पता नहीं मेरी उम्र को अब और कितना आगे सरकना बाकी है।

मेरा मन विगलित-सा होता जा रहा है। कार की घर-घर की आवाज फिर आने लगी है। ये युवक युवती जा रहे हैं शराब में धुत-मस्त।

इस विभाति के बाद ये सभी लोग तो जा रहे हैं अपने चिन्ह मेरे वक्ष पर छोड़ कर। शराब की गंध मुझे कचोटती जा रही है।

मैं यही सोचता हूँ कि क्यों नहीं ये दुनिया-सी टूट कर फूट जाती कि यहाँ अंधेरा फैल जाये। चौराहा नजर ही न आवे। और मेरी विकलता को निष्कर्मण्यता की राह मिल जाये। और मैं चौराहा नामी अस्तित्व मिट जाऊँ खत्म हो जाऊँ।

●मानिक मॉचलिया

एक स्नेह एक प्यार

फूल गांव
१—६

प्रिय मीनू

मैं इन छुट्टियों में अपने गांव हूँ। मैंने गांव आने से पहले जो तुमसे मिलने का वादा किया था उसे पूरा न कर सका—इस बात का मुझे अफसोस है तुम्हें शायद ताज्जुब हो रहा होगा—और यह होना स्वाभाविक ही है कि मैं इतना बेपरवाह कैसे हो गया यह लापरवाही नहीं थी जिसकी वजह से मैं तुमसे मिलने न आ सका बल्कि इसके पीछे एक लम्बी दास्तान है जिससे तुम्हें वाकिफ कराना मैं अर्से से चाहता था। मगर मौका न मिल सका। और आज उसे लिखकर ही अपनी स्थिति व्यक्त कर रहा हूँ। इस पत्र में मैं सिर्फ अपनी आज तक की जिन्दगी का वह हिस्सा तुम्हारे सामने रखूंगा जो पूर्णतया मेरी उस प्रकृति के विपरीत है जो तुम समझ रहे हो अथवा जिससे तुम अनभिज्ञ हो। अगला पूरा पत्र तुमसे सम्बन्धित होगा।

और मेरे जीवन की सबसे पहली और बड़ी घटना यह हुई कि मध्यरात्रि के तारे डूबती रात के वक्त जब उषा के आगमन की संभावना के कारण घबराये से मन रहे थे तो मैं पैदा हो गया। न मालूम कौन सा तुक है इस बात में कि आप इस दुनिया में आते ही रोना सीखो। अपवाद बनने की ताकत उस समय मेरे में नहीं थी फलतः मुझे भी रोना पड़ा। इधर मैं रोया और उधर लोगों ने थालियाँ बजाई। अब आकर महसूस होता है कि वे (दुनिया के लोग) मुझे उसी दिन सारी दुनिया

के फलसफे से अवगत करा देना चाहते थे कि तुम रोओगे तो लोग थालियाँ बजाकर खुश होंगे मिठाइयाँ बाँटेंगे और तुम रोओ इसलिए कि तुम्हें कहीं भी हँसान से पहले रोने के पहलू को ध्यान में रखना पड़ेगा—अथवा अगर हँसना नसीब न हो सका तो रोना तो नसीब हो ही जायगा।

इसके बाद मुझे यह सबक उस वक्त भी मिला जब मेरे क्लास टीचर मुझे मारा करते थे। उनके मारने की वजह यह थी कि उन दिनों पढ़ाई में बहुत कमजोर था मैं और सबसे आखिरी बैंच पर बैठता था। उनके मारने पर जब कभी-कभी मुझे रुलाई आ जाती और क्लास मे बैठे तमाम लड़कों की सहमी निगाहें मेरी नजरों से मिलतीं तो लगता जैसे सब मुझ पर हँस रहे हैं। यह चौथी जमात थी। प्रतिशोध की भावना मुझमें उसी दिन से घर कर जाती है हालांकि इसका एहसास मुझे बहुत बाद में हुआ (दुनियाँ से मिला यह दूसरा सबक है) और आज जो तुम मेरे कुछ पिछले रिकार्डों को देखकर दिमाग की तारीफ कर दिया करते हो सब इसी की बदौलत है। मैं इस तरह पढ़ना शुरू कर देता हूँ कि मेरे घर वाले रिमार्क किया करते थे, 'आजकल इसपर पढ़ाई का भूत सवार हो गया है।' और मुझे भी सोचना पड़ जाता कि कहीं वाकई यह बात तो नहीं है। धीरे-धीरे अगली जमातों में मेरा नम्बर आगे वाली बेंचों पर आता गया और जब एक दिन क्लास टीचर ने मुझे पास वाले लड़के को दो थप्पड़ लगाने के लिए कहा (क्योंकि वह लड़का यह नहीं बता सका था कि अकबर किसका लड़का था और मने उसे हुमायूँ की औलाद बता दिया था) तो मुझे हँसी आने लगी किन्तु ज्योंही मैंने उस लड़के की ओर मुखातिब हुआ और मेरी नजर उससे मिली तो हँसी गायब हो गई क्योंकि ऐसा लगा मुझे जैसे वह लड़का रो रहा हो। न जाने क्यों एक अजीब भावना के वशीभूत होकर मैं क्लास टीचर को कह देता हूँ कि मैं इसके थप्पड़ नहीं लगाऊँगा। यह आठवीं जमात थी।

यह भावना आज निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि दया थी जो उस लड़के के कारण मुझे सर्वप्रथम महसूस हुई और आज भी आप

हार्दिक भावना से प्राप्त सबक के साथ-साथ मेरी आदत में शुमार हो गई है।

मैंने एक पड़ोस की लड़की पर भी दया कर दी। वह इस प्रकार कि मैंने हमेशा उसके साथ खेलना स्वीकार कर लिया। धीरे-धीरे हमारे बीच स्नेह बढ़ता गया और उस वक्त जब मेरे एक बहिन थी मैंने उसे दूसरी बहिन बना लिया। आज जब मेरे छः बहिनें हैं, परिस्थिति बदल गई है और मुझे वह व्यंग्य कभी नहीं भूलता जो इस सम्बन्ध में तुम मुझ पर अक्सर कर दिया करते थे। 'वाह यार! तुम जैसा भाग्यशाली तो कोई हो ही नहीं सकता क्योंकि तुम उस ईश्वर की छः बेहतरीन कलाकृतियों के भाई हो और उसके छः महान अवतारों के साले बनोगे।' लोग सुनकर हंस पड़ते और मैं भी यह जानते हुए कि वह अतिरंजित सत्य है और काफी चुभता हो गया है हंसकर इसे सहन कर जाता। कुछ वर्ष पहिले उस लड़की की शादी हो चुकी है। इसको मैंने तुम्हें प्यार कहकर अवगत करवाया था। इसकी वजह थी कि मैं अपनी तमाम बुराइयां (मौलिक व बनावटी) सहित दुनिया के समक्ष आना चाहता था ताकि मुझे पता लग जाए कि दुनिया के साथ चलने के लिए कौन सी बुराइयां अपने अन्दर होनी ज़रूरी हैं। और बनावटी बुराई से पेश आना तो मुझे एक अजीब प्रकार की आनंदमय अनुभूति देता है। अभी भी मेरी यह आदत है और मैं पूर्ण तया इसी प्रकार हर एक के सामने पेश आता हूँ। (सिवाय तुम्हारे जिसके समक्ष कुछ पूर्व से काफी स्पष्ट होता गया हूँ।) यह आदत मुझे उस व्यक्ति को समझने में भी सहायता देती है।

इसके बाद का एक दृश्य मुझे और याद आता है जो मेरे लिए सबक का कारण बना और जिस पर समय की धूल का प्रभाव नहीं के बराबर है। वह इस प्रकार है कि मैं एक वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने जा रहा था। प्रथम तो मेरी स्कूल के विद्यार्थियों का मेरे चुनाव के बारे में भी पूर्ण एकमत था और मेरे बोलने (डिबेटिंग पॉवर) पर जब मैं अपने टीचर इन्चार्ज के साथ दुबका हुआ ट्रेन के डिब्बे में खड़ा था तो रिमार्क किया 'कौन सी रोने की प्रतियोगिता है जो आप इसे ले जा रहे

है। और मुझे लगा जैसे मैं वास्तव में रोने लगा हूँ और वे ठहाका मार कर हंस पड़े हैं। जब प्रतियोगिता जीतकर वापिस लौटा तो उन लड़कों की आँखों में मुझे अंगार दिखाई देने लगे जैसे वे मुझे आँखों के जरिये ही भस्म कर देना चाहते हों जैसे मैंने वह प्रतियोगिता जीत कर बहुत बड़ा गुनाह कर दिया हो और सचमुच ही यह एक गुनाह था इसका एहसास मुझे तब हुआ जब कोई कारण या या बहाना-यह आज तक नहीं जान सका उन्होंने मुझे इस कदर पीटा कि एक महीने तक मैं सिध के लिए अस्पताल के चक्कर काटता रहा। यह प्रवृत्ति हिंसात्मक थी। वे मुझसे जलते थे क्योंकि मैं उन्नति कर रहा था मगर मेरी उन्नति उनके लिए जलन क्यों बनी? इसका जवाब इस दुनिया वालों में से आज तक कोई भी मुझे नहीं दे सका। यह दसवीं दर्जा था।

यह वह वक्त होता है जब मैं चंचल सूरत सा किशोर दिखाई देता हूँ किन्तु बातें काफी गम्भीर कर जाया करता हूँ। लोग रिमार्क कसते हैं' तुम किशोरावस्था से कभी युवावस्था में प्रवेश नहीं करोगे-सीधे बुड्ढे हो जाओगे। कोई दार्शनिक बनने की भविष्यवाणी कर जाता। और मैं सिर्फ आज के लिए जीता और उसी में मुझे सबसे अधिक खुशी मिलती। कभी "बीत कल' की यादों ने मुझे गमगीन नहीं किया और कभी 'आने वाले कल' की ओर से चिन्तित नहीं हुआ। खैर! यह बहकना है। मूल विषय पर आता हूँ।

मैं आज जो कुछ भी हूँ तुमसे छिपा नहीं हूँ। मेरी तमाम अच्छाइयों और बुराइयों से तुम परिचित हो ही गये होगे। किन्तु मेरे कॉलिज जीवन की घटनाओं का एक पहलू एक ऐसा भी है जिसके अन्तिम चरण से मैं भी थोड़ ही दिनों से अवगत हुआ हूँ तो तुम्हारे जानने का तो सवाल ही नहीं उठता। और इससे उत्पन्न परिस्थितियों का अपनी दोस्ती पर आश्चर्यिक प्रभाव पड़ेगा। यह पत्र लम्बा हो गया है अतः अगले पत्र में मैं तुम्हें इससे वाकिफ कराऊँगा। शीघ्र ही। इसको यहीं समाप्त करता हूँ।

तुम्हारा
मनोज

मुजफ्फरपुर

१० १

प्रिय दीपू,

कल तुम्हें एक पत्र यानि अपनी बातों की भूमिका लिखी थी और आज ही उसे पूरा करने बैठ गया हूँ क्योंकि मुझे ऐसा लगा जैसे पहले वाले पत्र की वजह से तुम्हें एक मानसिक उलझन का सामना करना पड़ेगा। तुम यह सोचने लगोगे कि ऐसी कौन सी बात है जिसके लिए इतनी लम्बी भूमिका बनानी पड़ी? यह भी तुम सोचोगे कि आज तक जिसे तुमने पल भर के लिए गम्भीर नहीं पाया अब ऐसा कौनसा वज्रपात हो गया है जो उसके एक एक शब्द से गम्भीरतम व्यक्ति का सा अन्दाज टपकता है। इन सबका निराकरण करने के लिए आज यह दूसरा पत्र लिख रहा हूं।

पहला पत्र वैसे तो इस पत्र की भूमिका ही है किन्तु साथ ही मेरे जीवन का एक छोटा सा किन्तु महत्त्वपूर्ण दौर भी जिसमें से मैं गुजरा और वर्तमान दौर ऐसा है जिसका अन्दाज ही नहीं लगाया जा सकता कि इस से पहले का हिस्सा इस प्रकार रहा होगा। यही वजह थी कि मैंने उस दौर को तुम्हारे सामने रखा, तुम जान सको कि मैं क्या था और क्या हूँ, यह जानकर तुम्हें मेरी अन्तिम समस्या पर निर्णय करना होगा। एक बहुत ही जिम्मेवार व्यक्ति की तरह। तो अब से आगे शुरु करता हूँ—

मेरी हाई स्कूल की तालिम समाप्त हो गई थी और अब शहर आकर कालेज ज्वाइन की। यह सबसे पहिला संयोग था कि यहाँ मैं तुम्हारे घर के पड़ोस में रहने लगा। (एक प्राईवेट होस्टल था जिसमें ४५ लगभग छात्र थे—जैसे यह समझ लो कि उस होस्टल के कम्पाउण्ड में ही तुम्हारा घर था)। तुम उस वक्त दिल्ली पढ़ रहे थे। तुम्हारे घर में तुम्हारे पिताजी मां जी और तुम्हारी बहिन नीमा—ये ही रहते थे। वक्त ने जान पहिचान को धीरे-धीरे घनिष्ठता में बदल दिया। और इसके बाद इसे भी दैवयोग ही कहना चाहिए कि तुम्हारे घर वालों में

मुझे हर बात में विशेषत्व प्रदान किया—(कारण अस्पष्ट ही है—मैं सदा दिल को कुछ भी समझ लेता हूँ)—जिसके कारण यहाँ भी अपने साथियों में ईर्ष्या व जलन का पात्र बना। मैं समय के साथ अपने को गतिमान किये जा रहा था—साथ में चुपचाप मेरे प्रति होने वाली प्रतिक्रियाओं को देखकर इन सबको समझने की कोशिश थी। इस पर मीसा ने भी मुझे मेरे साथियों के ऊपर इस प्रकार महत्व दिया कि वे फुफकार उठे। किन्तु उनका फुफकारना मैं आज समझ पाया हूँ जब उनमें से कुछ मुझे देख कर अपना दिशों की ओर निकल जाते हैं अन्यथा उस वक्त वे मेरे अच्छे दोस्त थे—ऐसा मैं समझ रहा था। यह मेरा प्रथम वर्ष था।

अगले साल तुम भी इलाहाबाद पढ़ने आ गये। इस वक्त तक मैं तुम्हारे घर का एक अंग बन गया था। रात को मैं होस्टल की छत पर न सोकर तुम्हारे घर की छत पर ही सोता था व सर्दियों में भी नीचे तुम्हारे पिताजी के पास। सुबह का नाश्ता भी तुम्हारे घर पर ही लिया करता था। मीसा ने मुझे काफी स्नेह था उन दिनों। किन्तु मैंने कभी उसके साथ इस तरह का व्यवहार नहीं किया कि मेरे साथी कुछ अन्यथा समझने लगते। यही वजह थी कि मैं उससे न्यूनतम बात किया करता और वह भी अत्यन्त आवश्यक विषय पर। अपना स्नेह अपने भावों के जरिये ही उस पर प्रदर्शित कर देता था और इसी रास्ते उसने मुझे प्रति स्नेह प्रदान किया था। इन दिनों तक मैं और तुम भी काफी निकट होते गये यहाँ तक कि उस घनिष्ठता की सजा भी आ सकती थी किन्तु घटना कुछ इस तरह घटी कि एक ही झिझके में अलग हो गये। घटना इस तरह थी कि कोई अच्छी-सी फिल्म लगी हुई थी उन दिनों और नीमा की भी इच्छा थी उसे देखने की। हम सब उस एक दिन पहिले ही देखकर आ चुके थे और तुम किसी कार्यवश बाहर गये हुए थे। तुम्हारे पिताजी ने मुझे बुलाकर दस रुपये का नोट दिया और कहा "नीमा को पिक्चर दिखा लाओ।" मैं असमंजस में पड़ गया।

बहाना किया 'प्रमेय विशेष, विषय आदि में से किसी के साथ भेज दीजिए मेरे सर में कुछ दर्द-सा है। और मैं नोट्स वापिस करने लगा। तुम्हारे पिताजी कुछ कहते इससे पहिले ही मीता भड़क उठी 'फिर मुझे पिक्चर देखने नहीं जाना है।' टालने की उस समय कोशिश करने के बावजूद भी मुझे उसके साथ फिल्म देखने जाना ही पड़ा। और बस मेरे साथियों के लिए इतना ही काफी था—वे नाथे से उछल-उछल कर बाहर आने लगे। पहिले तो आकर मुझ पर ही व्यंग करने शुरू किये मगर इस पर भी उनकी छटपटाहट शान्त नहीं हुई तो कालेज में मेरी उपस्थिति में अन्य लड़कों के सामने भी मुझ पर व्यंग करने से नहीं चूके। बात फैल गई। इस वक्त तक तुम भी आ चुके थे और तुमने भी इसे सुना बल्कि इस रूप में कि मैंने ही यह फैलाई है। तुमने मुझसे कुछ नहीं पूछा सीधा अल्टीमेटम दे दिया अपने घर से सम्बन्धों को तोड़ने अथवा बढ़ाने के लिए। और मैंने ऐसा ही किया। मीता न तो कुछ समझ ही सकी और न कुछ उसने कहा ही बल्कि उसकी आँखों में बस परेशानी की झलक मुझे मिली।

अगले साल कुछ कारणों वश मैं होस्टल छोड़कर कॉलेज होस्टल में चला गया। तीन-चार महीने वहाँ रहने के पश्चात् मैं वापिस होस्टल आ गया। मीता से मैंने न ज्यादा बात की थी और न ज्यादा बात ही की। अलबत्ता उसकी आँखें बीच में घूम में नहीं नजर आती थी मैंने महसूस किया कि अब उनमें वापिस महकें भी थी चंचलता आ गई थी। मेरा स्नेह उसके प्रति वैसे ही कायम था। समय ने मेरे और तुम्हारे बीच की कड़वाहट की दीवार को भी हटा दिया था और हम वापिस घुलते जा रहे थे। कुछ दिनों बाद मुझे फिर कॉलेज होस्टल जाना पड़ा और तब से वहीं रह रहा हूँ। होस्टल में इस बीच कई लड़के आये व गये किन्तु मेरा सम्बन्ध तुम्हारे घर से बना रहा। परीक्षा भी हो गई।

और फिर नई शुरूआत थी यह। प्रारम्भ में मीता से मिला तो मैंने उसकी आँखों में हमेशा तैरते रहते स्नेह की जगह सहरोषी महसूस

की। मेरा यह सन्देह भी हो सकता था इसलिए मैंने कई बार सन्दिग्धता को सत्यता की कसौटी पर रखा मगर परिणाम एक ही थे यानि मेरा सन्देह सत्य था। उसकी आवाज कभी बहुत ही हल्की लगती और कभी बहुत ही भारी। मेरा स्नेह भी मुझे डोलता नजर आया और उसकी जगह बेरुखी ने ले ली। बात यहीं तक रहती तो अच्छा था मगर कुछ रोज पहिले किसी बात के दौरान उसने मेरा हाथ पकड़कर दबाया और जिस अन्दाज से मुझे घूरा तो सर्वप्रथम मुझे महसूस हुआ कि भीतर-ही भीतर कोई वस्तु रेंगती चली गई थी। वह भावना प्यार की थी और उस पर प्यार छा गया था।

तो मेरे अजीज दोस्त मीधू! यह है मेरी वास्तविक स्थिति जिसने मुझे एक दोराहे पर खड़ा कर दिया गया हूँ। चूंकि नीला तुम्हारी बहिन है इसलिए तुमसे छिपाना विश्वास घात होता—यही सोचकर मैंने तुम्हें सारे हालातों से वाकिफ़ करा दिया है। मैं तुम जैसे दोस्त को खोना भी नहीं चाहता था इसलिए गाँव आते वक्त तुमसे मिलने न आ सका क्योंकि तुमसे मिलने आता तो नीला अवश्य मिलती और इससे आगे होने वाले किसी भी परिणाम के लिए मैं दोस्ती को दाँव पर रखना गँवारा न करता। मैं यह दर्द भुलाऊंगा किन्तु दोस्ती में तुमसे बात करके तुम जैसा दोस्त खो बैठता तो यह दर्द शायद जिन्दगी भर नहीं भुला पाता। नीला समझदार लड़की है ऐसी मेरी धारणा है तुम उसे बहकने मत देना। मैं तुमसे मिलने तुम्हारे घर चाहे न आ सकूं तुम मेरी होस्टल पहुँच ही सकते हो।

अन्त में—तुम्हें खास तौर से निर्णय यह करना है कि इसके आगे तुम एक दोस्त के रूप में मुझे स्वीकार कर सकोगे या नहीं? अब अगर तुम मुझे दोस्त की तरह नहीं समझोगे तो मुझे उतना गम नहीं होगा जितना उस वक्त होता जब मैं तुमसे बात करता और तुम्हें खो देता। तुम्हारे निर्णय की सुविधा के लिए ही मैं आदि से आज तक बिल्कुल स्पष्टतया तुम्हारे सामने आया हूँ। मेरे तमाम दोषों व गुणों

के साथ-साथ जिन्दगी में आये तमाम विरोधाभासों से भी तुम्हें परिचित करा दिया है। निर्णय शीघ्र ही लिख भेजना। मैं बेसब्री से इन्तजार करूँगा।

तुम्हारा
मनोज

इलाहाबाद
१४ ६

प्रिय मनोज

तुम्हारे दोनों पत्र मिले—वास्तव में तुम्हें इस गहराई तक नहीं जानता था। तुममें चाहे कितनी ही कमजोरियाँ हों तुम्हारे पहिले पत्र ने मेरी नजरों में तुम्हें उठाया ही है। दूसरे पत्र के बारे में तीन दिन सोचने के पश्चात् आखिरकार यह निष्कर्ष निकाला कि कुछ तो निर्णय करना ही होगा। तुम्हें दोस्त मानने में एतराज मुझे पहिले भी नहीं था अब भी नहीं है फिर भी मैं नीला की तरफ से आश्वस्त होना चाहता था। यह एक ऐसी गम्भीर समस्या थी जिसे हल करना कम-से-कम बड़े भाई के लिए तो दुश्वार ही होता है। जानते हो बड़ा भाई अपने से छोटों के लिए बाप की जगह होता है और नीला भी मेरे से काफी छोटी है। मगर मैंने तुम्हारे लिए सिर्फ तुम्हारे लिए इस रिश्ते को भुनाया—नहीं तो मनोज एक बड़ा भाई कभी अपनी छोटी बहिन से इस प्रकार के प्रश्न नहीं करता करने की हिम्मत नहीं हो सकती अपने में बल मैंने नीला से लिया। ये भी लिख दूँ कि मैंने उससे क्या पूछा—परसों पहिले उस दिन हम दोनों छत पर अकेले ही बैठे थे तो एकाएक मैं उससे पूछ बैठा 'नीला! मनोज के बारे में तुम्हारे क्या विचार हैं?' मैं ही जानता हूँ मनोज कि किस तरह मुझे लज्जा के सम्पूर्ण आवरण को तोड़कर पूछना पड़ा था इस बात और नीला था बगैर किसी आश्चर्य के

जवाब था "अच्छे ही हैं क्यों ? अब बताओ मैं और क्या पूछता उससे ?

फिर मुझे पत्रों के पन्ने बोलते सुनाई देने लगे "तुम्हें मेरी अन्तिम समस्या पर निर्णय करना होगा एक जिम्मेदार व्यक्ति की तरह" और मैंने निश्चित किया कि आज निर्णय करके ही रहना है।

"नीता ! तुम्हारे और मनोज के क्या सम्बन्ध हैं ? मनोज ! तमाम शक्ति संचय करने के बाद इतना बोल पाया था मैं। इस बार नीता के ललाट पर कुछ सलवटें उभरीं फिर थोड़ी-सी हैरानी के लहजे में बोली 'क्या मतलब मैं समझी नहीं। वे बलफाज उसने अत्यन्त सयत होकर कहे थे मगर मुझे गुस्सा आ गया—ठीक शतरंज के उस खिलाड़ी की तरह जिसका वजीर दूसरी ही चाल में पिट गया हो।

"मैं मतलब कुछ नहीं जानता बस यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे और उसके क्या सम्बन्ध हैं ? बेहद कर्कश आवाज में पूछा मैंने।

सहमी मगर गम्भीर आवाज में उसने जवाब दिया 'साफ-साफ कहो भैया ?'

"सब साफ ही है नीता मुझे सिर्फ तुम्हारा जवाब चाहिए—जवाब में प्रश्न नहीं। मनोज ! यह प्रश्न मुझे खुद नहीं मालूम कि क्या सोचकर मैं कर गया और न मालूम उसे क्यों इतना बुरा लगा कि वह रोने लगी, फिर एकदम गम्भीर हो गई। फिर बोली—

"भैया ! तुम मुझे गलत समझ रहे हो मैंने कभी उन्हें तुमसे कम ही नहीं माना।

और मनोज ! मेरी उस वक्त की स्थिति का तुम सिर्फ अन्दाज ही लगा सकते हो। मेरे में उससे नजर मिलाने की शक्ति नहीं रह गई थी। एक बड़े भाई को छोटी बहिन के सामने किस कदर शमिन्दा होना पड़ा। मैं झटककर वहाँ से उठ खड़ा हुआ और सीधा स्टडी रूम में आकर तुम्हें पत्र लिखने बैठ गया। नीता से मेरी बोलने की हिम्मत नहीं पड़ रही है। कारण इसका यह है कि तुमने उसे गलत समझा और

मैंने भी मगर यह दोनों में से किसी को नहीं समझ पा रही है।

यह भी एक संयोग है कि तुमने मुझे एक बहिन के स्नेह को प्यार की संज्ञा देकर अवगत कराया था और मैं तुम्हें एक प्यार को बहिन के स्नेह की संज्ञा से अवगत करा रहा हूँ। कितनी विचित्र बात है मगर सत्य है। हो—सकता है इस पर भी विधि के विधान की कोई धारा लागू हो गई हो।

और एक भूल हो गई है तुमसे—जिसको सुधारना तुम्हारे लिए कदापि सम्भव नहीं हो सकता और इस भूल के लिए तुम पर कोई मुकदमा नहीं चलायेगा अलबत्ता तुम्हें अपने बयानों में मीरा को मेरे और तुम्हारे प्रथमपत्रों की ओर से सफाई देनी पड़ेगी।

उम्मीद है बोरे—शीघ्र ही। बस!

तुम्हारा
मीनू

×　　　×　　　×

इलाहाबाद
१६—६—

आदरणीय मनोज जी

क्षमा चाहती हूँ कि जुबान से 'तुम' सम्बोधन करना बहुत सहज था—लिख नहीं पाऊँगी।

मानती हूँ औरों के पत्र पढ़ना बुरी बात है मगर मजबूर थी—जिज्ञासा रोक नहीं पाई और इसी तुक में आपके द्वारा मैया को लिखे गये दोनों पत्र मेरे हाथों तक आ ही गये। वैसे मेरा इन पत्रों का पढ़ना हम दोनों के हक में अच्छा ही हुआ अन्यथा न तो मुझे अपनी सफाई देने का अवसर मिलता और न आप अपनी को समझ पाते।

मैया को मैंने बतला दिया है कि मैं आपको मैया से कभी कम नहीं मानती—यह सही ही है। और आप शायद (जैसा कि एक पत्र में आपने मैया को लिखा है) अब मुझे प्यार करने लगे हैं वैसा मैं भी

आपको चाहती रही हूँ—यह भी सही है।

पहिले दिन की जान पहिचान से और आपके यहाँ से जाने के बीच तकरीबन चार साल गुजर चुके हैं। इस बीच में मैंने हर तरह से आपको समझने की कोशिश की। मैंने आपको प्यार भी किया और इसी नाते कुछ अधिकार जताने की कोशिश भी। निराश तो आपने भी मुझे नहीं किया क्योंकि आपने हर तरह से मेरी खबर की वही सब कुछ किया जो मेरी पसन्द के अन्तर्गत आता था एक अंगरक्षक की तरह मेरे साथ रहे और कभी उदास नहीं हुए। इतना सब कुछ होते हुए भी मैंने निष्कर्ष यह निकाला कि आप मुझे प्यार नहीं करते या करना नहीं जानते (एक ही मतलब है। क्योंकि आपके किसी कार्य में अधिकार की भावना नहीं थी जो कुछ जाहिर होता था—वह यह था कि आप मुझ पर दया कर रहे हैं।

एक औरत को दया नहीं प्यार चाहिए सहारा चाहिए और अधिकार चाहिए—वह मैं आपसे नहीं पा सकती थी क्योंकि आपमें पुरुषत्व का अभाव है। आप एक आदमी कम और देवता अधिक हैं जिसकी इज्जत की जा सकती है, पूजा की जा सकती है—पत्थर का देवता समझकर अथवा हाड़ मांस का अवतार समझकर अथवा भाई समझ कर—मगर पति समझकर नहीं।

काश कि आपने मेरे निर्णय लेने से पहिले मुझे समझने की कोशिश की होती। मेरे लिए यही बहुत है कि एक पत्थर के पिघलने के आसार ही नजर आये।

अन्त में आपसे प्रार्थना है कि मुझे गलत न और न समझें—और एक एहसान करें कि मैं जिस रूप में आपको समझने को बाध्य हुई हूँ—मुझे उस रूप की पूजा करने से वंचित न करें।

आपकी आशीषाभिलाषी विनीता

●*नन्द किशोर आचार्य*

चुराये कथानक की कहानी

आनन्द जी भी खूब आदमी हैं। फटफट चप्पल घसीटते आए और बोले 'कहानी लाओ'। यहाँ अभी नई कहानी की दो लाइनें भी नहीं लिखी और जनाब माँगते हैं पूरी कहानी। मैंने कहा भाई मैंने तो कभी — कहानी नहीं लिखी वे बात काटकर बोले तो अब लिख डालो। देखो परसों तक मिल जानी चाहिए, फुलस्केप कागज पर लिखी हुई, समझे ना! मैंने गरदन हिलायी कि गर्दन अपने आप हिल गई, और वे धोती सम्भालते हुए सीढ़ियाँ उतर गए। मेरे दिमाग में कोई कहानी नहीं आयी। मन को बहुत कुरेदा तो एक सत्य घटना याद हो उठी। क्या थी कहानी। वह लिखने बैठा।

अब तुम्हीं कहो उषा बीस साल का एक छोकरा जिसे जीवन का कुछ अनुभव नहीं और जिसने कभी वास्तविकता का ज्ञान नहीं किया। उसके पास एक कहानी है। यानि मेरे जीवन में तो सिर्फ एक ही कहानी है—तुम्हारी कहानी। पर वो कहानी मैं कैसे किसी को बताऊँ? तुम्हारी शादी हो चुकी और अब वह कहानी बता कर मैं तुम्हारे जीवन विष घोलना नहीं चाहता। लेकिन हाँ मैं अपनी कहानी तो तुम्हें सुना ही सकता हूँ। यह दूसरी बात है कि उसमें कहीं तुम्हारा जिक्र आ जाए पर उसके लिए तुम मुझे माफ कर दोगी।

मेरे उस समय सोलहवाँ चल रहा था। मैट्रिक में था। एक दिन स्कूल से घर लौटने पर माँ ने बताया पड़ोस के घर में नए किरायेदार आ गए हैं। उनके एक लड़की भी है। होगी चौदह-पन्द्रह की। माँ ने

तब मुझे पता ही रही थी कि तुम कुछ लेने के लिए आयी और तब मैंने तुम्हें पहली बार देखा लेकिन न जाने क्यों तुम मुझे बहुत अच्छी नहीं लगी।

उसी दिन मैं शरतचन्द्र के एक उपन्यास 'देवदास' पर बनी फिल्म देखकर आया था। रात को एक सपना देखा जो मैंने तुम्हें भी सुनाया था। मने देखा कि घर के पिछवाड़े नीम के दरख्त के नीचे बैठा दादा जी का हुक्का पी रहा हूं तुमने मेरी शिकायत माँ से कर दी है और माँ मेरी 'खबर' लेने आ रही है। यह सपना देवदास की हुक्के वाली घटना से पूरा साम्य तो नहीं रखता फिर भी मुझे अच्छा लगा। एक विशेष बात यह भी हुई कि अब तुम मुझे अच्छी लगने लगी। मैंने शायद यह भी सोचा था कि तुम मेरे लिए एक अच्छी पारो बन सकोगी।

और फिर वही हुआ जो ऐसे मामलों में अक्सर होता है। मेरी तुम्हारी घनिष्ठता बढ़ने लगी। तुम मेरे से दो दर्जा पीछे थी और इसी लिए यदा-कदा मुझसे सवाल या अंग्रेजी पढ़ने आ जाया करती थी। फिर तुम्हारे इम्तिहान आ गए। मेरे इम्तिहान पूरे हो चुके थे इसलिए अब तुम नियमित रूप से मेरे पास पढ़ने के लिए आने लगी। कभी कभी तुम्हें ज्यादा देर हो जाती थी और तब तुम हमारे यहाँ ही सो जाती। इन दिनों हमारी घनिष्ठता कुछ और' रूप लेने लगी। मैंने एक दो दफा मौका देख कर तुम्हें कस के अपने सीने से लगा भी लिया था और तुम्हारा चुम्बन भी लिया पर तुमने कोई ऐतराज नहीं किया। तुम मेरी नीयत पहचान गई थी फिर भी मेरे से कटी-कटी रहने की बजाय तुम मेरे और नजदीक आती गई। और फिर उस दिन तुम हमारे घर बिना वजह ही सो गई थी क्योंकि दूसरे दिन तुम्हारा चित्र कला का पर्चा था जिसके लिए तुम्हें सहायता की आवश्यकता नहीं थी। और उस रात को कुछ हुआ उसका दोष तुम अगर मुझ अकेले को ही देना चाहो तो मैं नहीं मानूंगा। सब कुछ जानते-बूझते हुए भी तुम मेरे यहाँ सोयी जिससे मुझे बढ़ावा मिला और   । और फिर तुमने

कोई विरोध भी तो नहीं किया था। इसीलिए उसका आधा दोष मैं तुम्हें भी देना चाहूँगा।

दूसरे दिन मैंने सोचा कि देवदास ने तो ये सब कुछ नहीं किया था। मुझे लगा कि देवदास मुझसे कह रहा है। मैं नहीं सोचता था कि तुम इतने कमीने हो। मैं शर्म से जमीन में गड़-सा गया। पर फिर मैंने अपने आपको समझाया कि मेरी और देवदास की परिस्थितियाँ अलग हैं और फिर वह तो एक असफल प्रेमी था पर तो मुझे सफल प्रेमी बनना है फिर भी पता नहीं उसके नाम से मुझे क्यों इतना मोह हो गया था कि मैंने तुम्हें कहा कि अब तुम मुझे देवदास कहोगी। तुम मेरी बात पूरी तरह नहीं समझ सकी पर तुमने बात मानली।

और फिर दो साल गुजर गये। देवदास का आदर्श तो कब से मैं भूल ही गया था। बरसातों से शुरू फिर कर हम वो सब करते रहे जो नहीं करना चाहिए था तीन चार दफा हम लोग छुपकर सिनेमा देखने भी गए। इम्तिहान के दिनों में तुम मेरे पास पढ़ने आती रही मैं तुम्हें पढ़ाता रहा। मेरे दो-एक दोस्तों को मैंने सब कुछ बता दिया था और अब मैं उनकी निगाह में 'हीरो' था।

उस दिन रात को माँ को कुछ शक-सा हो गया था कि उसने निगाह रखी। उन्होंने तुम्हें मेरे साथ देख लिया और हम रंगे हाथों पकड़े गए। दूसरे दिन से मेरे और तुम्हारे मिलने पर रोक लगा दी गई। मेरी माँ ने तुम्हारी माँ को सब कुछ बता दिया और मैंने सुना कि तुम्हें इतना पीटा गया कि चार दिन तक तुम खाट से न उठ सकी। तुम्हें स्कूल से उठा लिया गया और फिर तुम्हारे पिताजी शादी के लिए दौड़-धूप करने लगे ताकि उनके मुँह पर कालिख न पुते। अगर मैं तुम्हारी कहानी लिखता होता तो बताता कि तुम्हें देखने के लिए कैसे-कैसे लोग आते रहे और तुम नुमाइश की चीज बना दी गई। पर मैं अभी अपनी कहानी लिख रहा हूँ इसलिए सिर्फ इतना ही कहूँगा कि डेढ़ महीने बाद ही तुम बाजे गाजों के साथ एक मामूली टाइपिस्ट के हवाले कर दी गई जो मेरे

जैसा खूबसूरत नहीं था। लेकिन अगर सच पूछो तो मुझे कोई विशेष दुख नहीं हुआ।

लेकिन अब देवदास मुझे फिर याद आया। उन्हीं दिनों मैं अपने एक रिश्तेदार के यहाँ जो देहरादून रहते थे छुट्टियाँ बिताने चला गया और मुझे यूँ लगा कि शायद अब मैं जिन्दगी भर देवदास की तरह भटकता ही रहूँगा पर तुम जानती हो कि मैं ऐसा नहीं कर सका? छुट्टियाँ खत्म हो गई और मैं चुपके से घर आ गया। पिता जी के डर से शराब तो नहीं पी लेकिन दोस्तों के साथ छुपकर फिल्म के नायक की तरह सिगरेट जरूर पी और अब तो आदत-सी पड़ गई है। अरे एक बात लिखना तो भूल ही गया। तुम्हारी शादी से पहले एक दफा मैंने यह कोशिश भी की थी कि तुम्हारे ललाट पर मेरी यादगार के रूप में चोट का निशान बिठा दूँ पर मुझे मौका भी मिला। एक दिन संयोगवश तुम मुझे सीढ़ियों पर मिल गई तो मैंने वो कंकड़ जिसे मैं हमेशा इसी प्रयोजन के लिए साथ रखता था कि तुम पर चलाऊँ। तुम नीचे झुक कर आगे निकल गई और वही सिर्फ हवा में लहराकर रह गई। मुझे उस समय कौन सिवाय चोट याद आ गया।

और इस तरह मेरी कहानी भी यहीं समाप्त हो गई जहाँ मध्यम वर्ग के प्रेमियों की कहानी अक्सर समाप्त हुआ करती है। तुम्हारी शादी के एक साल बाद मेरी भी शादी हो गई। एक दफा सोचा कि देवदास तो उम्र भर कुँआरा ही रहा था पर देवदास बनने के विचार की बजाए माधुरी (मेरी पत्नी) मुझे अधिक अच्छी लगी। हमारा दाम्पत्य जीवन बड़ा मधुर है पर मैंने तुम्हारी कहानी माधुरी को नहीं बतायी है।

देखें मान्यवर जी यह कहानी पसन्द करते हैं या नहीं। वर्ना फिर रिजेक्ट तो है ही।

२५

● सूर्य प्रकाश बिस्सा

परछाईयाँ : अपनी और परायी

पार्क के लॉन में आज भी रमेश हर रोज की तरह टहल रहा था। उसके साथ वही चिरपरिचित युवती थी। आज इन दिनों में यह युवती हर रोज रमेश के साथ इधर-उधर घूमती फिरती दिखाई देती थी। रमेश एक सभ्य सुन्दर तथा गम्भीर युवक था। जिसके विचारों को सुनकर कोई भी व्यक्ति उसका आदर किये बिना नहीं रह सकता था। पर जब से यह युवती उसके साथ देखी जाने लगी, तब से वह लोगों की दृष्टि में हेय समझा जाने लगा साथ ही उसके चन्द मित्रों ने उससे मिलना जुलना भी छोड़ दिया।

दोनों बड़े गम्भीर थे। चुप्पी और मौन अकस्मात रमेश ने इस युवती से कहा 'सरोज। अंधेरा हो रहा है अब हमें घर चलना चाहिए।' यह सुनकर सरोज ऐसी चौंकी मानों उसे किसी ने सपने में झकझोर दिया हो। जरा सा संभलते हुए, सरोज ने रमेश की तरफ प्रश्नवाचक दृष्टि उठा दी जैसे उसने रमेश की बात न सुनी हो। रमेश ने अपनी बात पुनः दोहराई "अंधेरा हो गया है अब घर चलना चाहिये।"

सरोज ने 'हूं' कहा। दोनों चुपचाप पार्क से बाहर निकल कर एक कच्चे रास्ते की तरफ मुड़ गये। रास्ता काफी ऊबड़ खाबड़ था। सरोज ने रमेश की ओर दृष्टि उठाई न जाने क्या निहार रही थी। उसका ध्यान जमीन की तरफ नहीं था। चलते-चलते सरोज का पैर एक पत्थर से टकरा गया सरोज लड़खड़ा गई।

रमेश ने उसे सम्भालते हुए कहा "रास्ता खराब है संभल कर चलो वरना गिर जाओगी।"

'तुम साथ जो हो। मुझ मित्रों को सम्भालने के लिए।' सरोज ने उत्तर दिया फिर वही चुप्पी।

वे दोनों एक मकान के अहाते में घुसे जिसकी दूसरी मंजिल पर रमेश रहता था। रमेश के पास छोटा सा फ्लैट था मगर था वह आधुनिक साजो सामान से सजा हुआ। रमेश को यह फ्लैट उसकी कम्पनी की तरफ से मिला हुआ था। जिसका वह मैनेजर था।

रमेश और सरोज दोनों ड्राईंग रूम में आकर बैठे। रमेश ने नौकर को आवाज लगाई। नौकर थोड़ी देर में चाय लगा गया। सरोज ने चाय बनाई तथा एक दूसरे को देखते चाय की चुस्कियों के साथ-साथ अपने अन्तर्द्वन्द में लीन हो गये। चाय की समाप्ति के साथ-साथ सरोज ने मौन तोड़ा मैं अब चलती हूँ। कल शाम को यहीं पर मिलूँगी।

रमेश ने मुस्कराते [illegible] स्वीकारात्मक गर्दन हिलायी।

सरोज चली गई। रमेश अपने सोफे पर बैठा कुछ विचारता रहा। उन बीते दिनों की एक झलक दिखाई पड़ी। रमेश को वह दिन याद आया जब सरोज से उसका पहला-पहला परिचय हुआ था।

एक दिन वह जब अपनी रजनी भाभी—जो उसके चचेरे भाई की पत्नी है के यहाँ एक पार्टी में गया था। उस दिन भाभी ने कई लोगों से उसका परिचय कराया था। परिचय तो क्या था सिर्फ नाम मात्र की फार्मेलिटी पूरी की गई थी। पार्टी की समाप्ति पर जब रमेश ने वहाँ से चलने की इजाजत चाही थी तब रजनी भाभी ने अगले दिन पुनः लंच पर आने को कहा था।

दूसरे दिन दोपहर को लंच के समय रमेश रजनी भाभी के यहाँ पहुँच गया। भाभी रमेश का इन्तजार कर रही थी। दोनों देवर भाभी खाना खा चुकने के बाद बातचीत करने लगे। "भैया एक आवश्यक बात करना चाहती हूँ। रमेश ने भाभी की ओर गम्भीरता से देखा। भाभी ने पुनः कहा जिस सरोज से कल तुम्हारा परिचय करवाया था उसके बारे में एक गम्भीर संकेत करना चाहती हूँ कि उसका

●सूर्य प्रकाश बिसा

परछाईयाँ . अपनी और परायी

पार्क के लॉन में आज भी रमेश हर रोज की तरह टहल रहा था। उसके साथ वही चिरपरिचित युवती थी। प्रायः इन दिनों में वह युवती हर रोज रमेश के साथ इधर-उधर घूमती फिरती दिखाई देती थी। रमेश एक सभ्य सुन्दर तथा गम्भीर युवक था। जिसके विचारों को सुनकर कोई भी व्यक्ति उसका आदर किये बिना नहीं रह सकता था। पर जब से यह युवती उसके साथ देखी जाने लगी तब से वह लोगों की दृष्टि में हेय समझा जाने लगा साथ ही उसके अन्य मित्रों ने उससे मिलना जुलना भी छोड़ दिया।

दोनों बने गम्भीर थे। चुप और मौन यकायक रमेश ने इस युवती से कहा 'सरोज! अंधेरा हो रहा है अब हमें घर चलना चाहिए।' यह सुनकर सरोज ऐसी चौंकी मानों उसे किसी ने सपने में झकझोर दिया हो। जरा सा संभलते हुए, सरोज ने रमेश की तरफ प्रश्नवाचक दृष्टि उठा दी जैसे उसने रमेश की बात न सुनी हो। रमेश ने अपनी बात पुनः दोहराई "अंधेरा हो गया है अब घर चलना चाहिये।'

सरोज ने 'हूं' कहा। दोनों चुपचाप पार्क से बाहर निकल कर एक कच्चे रास्ते की तरफ मुड़ गये। रास्ता काफी उबड़ खाबड़ था। सरोज ने रमेश की ओर दृष्टि उठाई न जाने क्या निहार रही थी। उसका ध्यान जमीन की तरफ नहीं था। चलते-चलते सरोज का पैर एक पत्थर से टकरा गया सरोज लड़खड़ा गई।

रमेश ने उसे सम्भालते हुए कहा 'रास्ता खराब है संभल कर चलो वरना गिर जाओगी।"

"तुम साथ जो हो। मुझे मिरचों को सम्भालने के लिए।' सरोज ने उत्तर दिया फिर वही चुप्पी।

वे दोनों एक मकान के अहाते में घुसे जिसकी दूसरी मंजिल पर रमेश रहता था। रमेश के पास छोटा सा फ्लैट था मगर था वह आधुनिक साजो सामान से सजा हुआ। रमेश को यह फ्लैट उसकी कम्पनी की तरफ से मिला हुआ था। जिसका वह मैनेजर था।

रमेश और सरोज दोनों ड्राईंग रूम में आकर बैठे। रमेश ने नौकर को आवाज लगाई। नौकर थोड़ी देर में चाय लगा गया। सरोज ने चाय बनाई तथा एक दूसरे को देखते चाय की चुस्कियों के साथ-साथ अपने अन्तर्द्वन्द में लीन हो गये। चाय की समाप्ति के साथ-साथ सरोज ने मौन तोड़ा मैं अब चलती हूँ। कल शाम को यहीं पर मिलूँगी।

रमेश ने मुस्कराते हुए स्वीकारात्मक गर्दन हिलादी।

सरोज चली गई। रमेश अपने सोफे पर बैठा कुछ विचारता रहा। उसे बीते दिनों की एक झलक दिखाई पड़ी। रमेश को वह दिन याद आया जब सरोज से उसका पहला-पहला परिचय हुआ था।

एक दिन वह जब अपनी रजनी भाभी—जो उसके चचेरे भाई की पत्नी है के यहाँ एक पार्टी में गया था। उस दिन भाभी ने कई लोगों से उसका परिचय कराया था। परिचय तो क्या था सिर्फ नाम मात्र की फार्मेलिटी पूरी की गई थी। पार्टी की समाप्ति पर जब रमेश ने वहाँ से चलने की इजाजत चाही थी तब रजनी भाभी ने अगले दिन पुनः लंच पर आने को कहा था।

दूसरे दिन दोपहर को लंच के समय रमेश रजनी भाभी के यहाँ पहुँच गया। भाभी रमेश का इन्तजार कर रही थी। दोनों देवर भाभी खाना खा चुकने के बाद बातचीत करने लगे। 'भैया एक आवश्यक बात करना चाहती हूँ। रमेश ने भाभी की ओर गम्भीरता से देखा। भाभी ने पुनः कहा 'जिस सरोज से कल तुम्हारा परिचय करवाया था

मामूली सा फर्क है मगर उसकी हर साड़ी की कीमत उसके पति की तनख्वाह से कहीं अधिक होती है। रमेश सुनता जा रहा था भाभी ने अपनी बात कहती जा रही थी 'और कोई भी स्त्री उससे मिलता रख कर सुख चैन से नहीं रह पाती।

रमेश ने धुलकर नया प्रश्न किया "और तुम भाभी' रजनी पुनः अस्वस्थ हो कहने लगी "अब मुझे भी इसके बारे में अनुभव हो रहा है। न जाने वह कौन सी घड़ी थी जब मेरी यह मित्र बनी थी। रजनी ने कहना जारी रखा। अब तो मेरा भी इस जहर के कारण दम घुटा जा रहा है मैंने सोचा कि तुम्हें तो पहले से ही आगाह कर दूं। क्योंकि तुम्हें कहीं मेरे परिचय करवाने के कारण चक्कर में न डाल दे।

रमेश स्तब्ध रह गया। भाभी को सांत्वना देकर अपने ऑफिस में आ गया। रमेश के हृदय पलट पर कई परछाइयाँ आईं। वह विचारता गया।

रमेश विचार रहा था कि रजनी भाभी के कहने के कुछ दिनों बाद सरोज से एक पार्क में भेंट हो गई थी। उस दिन के बाद वे प्रायः मिलते ही रहते थे। इस पर उनके अनेक मित्रों ने उसे टोका था मगर दूसरों के टोकने से उसके हृदय में एक जिज्ञासा उत्पन्न कर दी थी–उस नारी चरित्र को जानने की वह प्रायः सरोज से मिलता रहा–दोनों अत्यधिक नजदीक आने लगे।

सरोज को लेकर रमेश का अभिन्न मित्र नरेश भी रमेश की काफी आलोचना कर चुका था। एक दिन नरेश ने गुस्से में कहा 'रमेश तुम्हारे वे आदर्श कहाँ गये ? कहाँ गई वह नैतिकता व मर्यादा की बातें ? तुम्हारे बारे में मैं इतना नहीं सोच सकता था। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि तुम्हारा इतना बड़ा पतन हो जायेगा। तुम्हारे बारे में जो चर्चा सुनने को मिलती है उससे मुझे बड़ी शर्म लगती है। 'मगर रमेश उस समय भी मौन रह कर सभी कुछ सुन कर जहर का घूंट पी गया। रमेश यह सब विचारते विचारते अवाक् हो गया। उसे लगा

कि सब आवरण आच्छन्न हैं ये लोग। मन में कुछ और जुबान पर कुछ और। इसी उधेड़ बुन में उसे यह ध्यान न रहा कि उसका पुराना नौकर रामू कब से खाना रखकर खड़ा है। रमेश को उदास देख कर रामू ने आर्द्र स्वर में कहा 'बाबू क्या बात है।' रमेश का ध्यान टूटा। वह उठा। हाथ मुँह धोकर खाना खाने का प्रयास करने लगा।

अरुचि से खाना खाने के पश्चात् रमेश अपने बिस्तर पर लेट गया। और फिर से उसका ध्यान अतीत की ओर चला गया। वह सोचने लगा। एक दिन उसने सरोज से उसके बीते जीवन के बारे में पूछा था तब सरोज ने बताया था।

मैं एक गरीब परिवार की लड़की हूँ। मेरे पति धनेश के साथ मेरी शादी हुई। नाम उनका अवश्य ही धनेश है मगर हैं वह गरीब ही। एक मिल में क्लर्क हैं। मैं जब शादी के बाद पहली बार घर आई तब देखा घर में कुछ नहीं है। धनेश मेरे लिए तोहफे के तौर पर कुछ एक साड़ियां लाया था। जो काफी कीमती थी। उसकी बड़ी भेंट देखकर मुझे महसूस हुआ कि मुझसे अधिक प्रेम करने के कारण अपनी सामर्थ्य से अधिक भेंट लाकर दी है। मगर रमेश धीरे-धीरे कुछ और ही निकला यह मुझे एक रात ज्ञात हुआ।

कुछ रुक कर अपने को सम्भाला जैसे किसी निगूढ़ वेदना ने उसका गला अवरुद्ध कर दिया है। वह कुछ रुक-रुक कर बोली रात्री का समय था। अपने पति की प्रतीक्षा कर रही थी। मेरे अन्दर में सिहरन थी। मैं अपने प्रियतम को सर्वस्व अर्पण करने की सदा सोचती थी। तब सदा की तरह नहीं, आज धनेश शराब में धुत एक व्यक्ति को साथ लेकर आया था—जिसके कपड़ों से लगता था मानों वह काफी पैसे वाला है।

धनेश ने लड़खड़ाते कदमों को संभालकर अस्पष्ट स्वर में कहा, "रानी सब ? ये मेरे मित्र 'धन्ना राम' हैं। काफी धनाढ्य हैं। ये जो पहली रात को साड़ियाँ मैंने तुम्हें भेंट की थीं वे सब इन्हीं की दी हुई

मामूली सा मसला है मगर उसकी हर साड़ी की कीमत उसके पति की तनख्वाह से कहीं अधिक होती है। रमेश सुनता जा रहा था भाभी ने अपनी बात कहती जा रही थी और कोई भी स्त्री उससे मित्रता रख कर सुख चैन से नहीं रह पाती।

रमेश ने सुनकर नया प्रश्न किया 'और तुम भाभी' रजनी गुम-सुम सी हो कहने लगी 'अब मुझे भी इसके बारे में अनुभव हो रहा है। न जाने वह कौन सी घड़ी थी जब मेरी यह मित्र बनी थी। रजनी ने कहना जारी रखा। अब तो मेरा भी इस जहर के कारण दम घुटा जा रहा है मैंने सोचा कि तुम्हें तो पहले से ही आगाह कर दूं। क्योंकि तुम्हें कहीं मेरे परिचय करवाने के कारण चक्कर में न डाल दे।

रमेश स्तब्ध रह गया। भाभी को सांत्वना देकर अपने ऑफिस में आ गया। रमेश के हृदय पटल पर कई परछाइयाँ आईं। वह विचारता गया।

रमेश विचार रहा था कि रजनी भाभी के कहने के कुछ दिनों बाद सरोज से एक पार्क में भेंट हो गई थी। उस दिन के बाद वे प्रायः मिलते ही रहते थे। इस पर उनके अनेक मित्रों ने उसे टोका था मगर दूसरों के टोकने से उसके हृदय में एक जिज्ञासा उत्पन्न कर दी थी-उस नारी चरित्र के जानने की वह प्रायः सरोज से मिलता रहा-दोनों अत्यधिक नजदीक आने लगे।

सरोज को लेकर रमेश का अभिन्न मित्र नरेन भी रमेश की काफी आलोचना कर गया था। एक दिन नरेन ने गुस्से में कहा "रमेश तुम्हारे वे आदर्श कहाँ गये ? कहाँ गई वह नैतिकता व मर्यादा की बातें ? तुम्हारे बारे में मैं इतना नहीं सोच सकता था। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि तुम्हारा इतना बड़ा पतन हो जायेगा। तुम्हारे बारे में जो चर्चा सुनने को मिलती है उससे मुझे बड़ी शर्म लगती है। 'मगर रमेश उस समय भी मौन रह कर सभी कुछ सुन कर जहर का घूंट पी गया। रमेश यह सब विचारते विचारते उदास हो गया। उसे लगा

कि सब आवरण आच्छन्न हैं वे लोग। मन में कुछ और जुबान पर कुछ और। इसी उधेड़ बुन में उसे यह ध्यान न रहा कि उसका पुराना नौकर रामू कब से खाना रखकर खड़ा है। रमेश को उदास देख कर रामू ने आर्द्र स्वर में कहा 'बाबू क्या बात है।' रमेश का ध्यान टूटा। वह उठा। हाथ मुँह धोकर खाना खाने का प्रयास करने लगा।

यद्यपि से खाना खाने के पश्चात् रमेश अपने बिस्तर पर लेट गया। और फिर से उसका ध्यान अतीत की ओर चला गया। वह सोचने लगा। एक दिन उसने सरोज से उसके बीते जीवन के बारे में पूछा था तब सरोज ने बताया था।

मैं एक गरीब परिवार की लड़की हूँ। मेरे पति धनेश के साथ मेरी शादी हुई। नाम उनका अवश्य ही धनेश है मगर हैं वह गरीब ही। एक मिल में क्लर्क हैं। मैं जब शादी के बाद पहली बार घर आई तब देखा घर में कुछ नहीं है। धनेश मेरे लिए तोहफे के तौर पर कुछ एक साड़ियाँ लाया था। जो काफी कीमती थी। उसकी बड़ी भेंट देखकर मुझे महसूस हुआ कि मुझसे अधिक प्रेम करने के कारण अपनी सामर्थ्य से अधिक भेंट लाकर दी है। मगर रमेश धीरे-धीरे कुछ और ही निकला यह मुझे एक रात ज्ञात हुआ।

कुछ रुक कर अपने को सम्भाला जैसे किसी निगूढ़ वेदना ने उसका गला अवरुद्ध कर दिया है। वह कुछ रुक-रुक कर बोली 'रात्री का समय था। अपने पति की प्रतीक्षा कर रही थी। मेरे अन्तर में सिहरन थी। मैं अपने प्रियतम को सर्वस्व अर्पण करने को सदा सोचती थी। तब सदा की तरह नहीं आज धनेश शराब में धुत एक व्यक्ति को साथ लेकर आया था—जिसके कपड़ों से लगता था मानों वह काफी पैसे वाला है।'

धनेश ने लड़खड़ाते कदमों को संभालकर अस्पष्ट स्वर में कहा, "रानी सच ? ये मेरे मित्र 'पन्ना राय' हैं। काफी अमीर हैं। वे जो पहली रात की साड़ियाँ मैंने तुम्हें भेंट की थी, वे [illegible]

थी।' मैं खौल रही थी मैं चुपचाप सुन रही थी। मैंने धन्नाराम की तरफ क्षणिक दृष्टिपात किया। धन्नाराम कुटिलता से मुस्करा रहा था। उसकी मुस्कान जहरीली थी। मैं भय से घुटने लगी।"

सरोज ने एक लम्बा साँस लेकर पुनः कहना शुरू किया धनेश ने धन्नाराम से कहा आप बैठो मैं अभी आ रहा हूँ। धन्नाराम मेरे पलंग पर बैठ गया। मैंने कमरे से बाहर जाने का प्रयास किया। मगर धनेश ने कमरे के कपाटों को बाहर से बंद कर दिया था। मेरी शंका सत्य में प्रकट हो गई मैं बिलकुल घबरा गई। मैं सोच रही थी कि क्या करूँ ? तब तक धन्नाराम ने मुझे जबरदस्ती पलंग पर बिठला लिया। मैं उससे छुटकारा पाने हेतु लड़ती रही मगर उसकी कठोर बाहें मुझे जकड़ती गई। मैं अपने सतीत्व की रक्षा न कर सकी। जोर जोर से चिल्लाने पर पति की इज्जत और अपनी इज्जत के भय से मैंने अपना सर्वस्व गवां दिया।

सरोज सुबकियाँ भरने लगी थी और अब वह पूर्ण रूप से रो रही थी। मैं अपने सतीत्व का लुटेरा उस धन्ना सेठ को नहीं अपने पति को मानती हूँ। और अपने पति से प्रतिशोध लेने के लिए मैं विद्रोहिणी बन गई चाहे वह विद्रोह स्वरूप भले न हो। फिर मानसिक संघर्ष। मैं गिरती गई। मगर आगे चलकर देखा तो लगा कि धनेश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि वह तो और भी अकर्मण्य हो गया।

सरोज सुबकती-सुबकती कहे जा रही थी 'मैंने संबल ढूँढना चाहा। मगर कोई न मिला। रमेश जबसे तुम्हें देखा है मुझे नई दृष्टि मिली है। मैंने उससे मिलना छोड़ दिया है। मैं राह बदलना चाहती हूँ। यह मौका मिला। मिलते ही मैंने राह बदलना प्रारम्भ कर दिया है।

रमेश को अतीत दर्शन ह रहा था। वह सोचता गया कि सरोज एक दिन आई थी तब कह रही थी कि रमेश मैंने सर्विस करली है। रमेश ने पूछा था कहाँ ? सरोज ने बताया एक बच्चों की स्कूल में टीचर का काम मिल गया है।

कुछ दिन बाद उसने कहा था "रमेश अब नहीं सहा जाता।"

रमेश ने पूछा था क्या ? सरोज ने कहा कि "अमेश का अत्याचार। वह चाहता है कि मैं किसी भी तरह उसकी सराब का खर्चा चलाऊं। मगर अब मुझसे ऐसा नहीं हो सकता।"

और एक दिन सरोज फिर आई। बहुत प्रसन्न थी जैसे सुबह का ताजा गुलाब। वह रही थी आज रमेश मैं बहुत खुश हूं। रमेश ने कारण पूछा तो उसने बताया "मैंने अमेश को तलाक देने के लिए जो अर्जी दी थी कोर्ट ने आज उसे मन्जूर कर लिया है।

उन दोनों के बीच की दूरियाँ और कम हो गई। वह बिखरता गया और निशा के करीब उसे जकड़ते गये।

×　　　　×　　　　×

उस दिन सुबह जब चाय आई तो उसने देखा सूरज काफी ऊंचा चढ़ आया था। वह उठने का प्रयास करने लगा, मगर शरीर की पीड़ा ने न उठने को मजबूर कर दिया। रमेश ने बीमार होने का सन्देश अपने असिस्टेन्ट को दे दिया।

सारा शरीर टूट रहा था। रमेश बिस्तर पर ही पड़ा रहा। रामू से दो तीन बार चाय अवश्य माँग ली थी।

शाम के समय सरोज आई। उसने रमेश से लेटे रहने का कारण पूछा तब उसने उत्तर दिया "यूं ही सर में दर्द है।

सरोज ने ज्योंही सिर दबाने के लिए उसके सिर पर हाथ रखा तो उसे महसूस हुआ कि शरीर तवे की तरह तप रहा है। सरोज ने कहा तुम्हें तो बुखार है। और फोन द्वारा डाक्टर को इत्तिला दे दी और घर बुला लिया।

सरोज फोन करने के बाद रमेश का सिर सहलाने लगी। कुछ समय में डाक्टर आ गया। उसने टेम्प्रेचर लिया और कुछ बातें पूछीं और एक पर्चे पर कुछ दवाइयों के नाम लिख कर ध्यान रखने का कह गया। दवायें रामू से उसी वक्त मंगवाली गई। सरोज डाक्टर के बताये अनुसार दवाएँ देती रही। रमेश का बुखार दिन ब दिन बढ़ रहा

था। सरोज ने छुट्टी लेकर हर समय रमेश के घर रहना आरम्भ कर दिया।

नरेन भी आ गया रमेश की हालत चिंताजनक हो रही थी। सभी चिन्तित थे। रमेश बुखार के जोर से बेहोश सा ही रहता था। कभी कभी बड़बड़ा देता था।

सरोज व नरेन दोनों रमेश की सेवा करने में संलग्न थे। जब भी सरोज कमरे में आ जाती नरेन कमरे से बाहर चला जाता। वैसे भी नरेन उदास रहता था वह सरोज से पूर्ववत् घृणा करता था। वह उसे कुलटा व चरित्रहीन समझता था। इतने दिन बाद भी जब सरोज को रमेश की सेवा सुश्रुषा करते देखा तब भी उसके दिमाग में घृणा जड़ जमे रही।

रात बढ़ रही थी। रमेश के पास नरेन बैठा था। रमेश के दवाई लेने के वक्त हो गया था। मगर सारी दवाएँ सरोज ही देती थी। सरोज भी आज कुछ अस्वस्थ थी इसीलिए वह पास के कमरे में सो रही थी। नरेन ने उठकर टेबल पर से दवाई की शीशी उठाई। मगर शीशी खाली थी। उसने रमेश से पूछा 'क्लोरोमाईसीटीन की नई शीशी कहाँ है।

रमेश ने जवाब दिया " सरोज या रामू से ही पता चल सकेगा।" नरेन ने रामू को आवाज दी। मगर रामू घर जा चुका था। वह रात को अपने घर ही सोता था।

रमेश पास के कमरे में सरोज से पूछने जाने के लिए उठने लगा। कमजोरी के कारण असफल रहा। नरेन ने टोक दिया और स्वयं उससे पूछने जाने को तैयार हो गया।

सरोज सो रही थी। नरेन कमरे में गया और उसने दवा ढूंढने का प्रयास किया। मगर दवा नहीं मिली। परन्तु एक डायरी अवश्य मिल गई जिस पर लिखा था 'सरोज'। न जाने क्यों उसके हाथों ने डायरी को जेब के हवाले कर दिया।

नरेन ने आवाज देने का निश्चय करके सरोज को आवाज दी। सरोज हड़बड़ा कर उठी और नरेन को अपने पास खड़ा देख कर बड़ी ही प्रश्नवाचक नजरों से नरेन को देखने लगी। नरेन ने पूछा 'क्लोरोमा सीटीन' की नई शीशी कहाँ रखी है ?

सरोज ने सामने की आलमारी की ओर इशारा कर दिया और स्वयं उसी मुद्रा में नरेन को देखती रही। नरेन शीशी निकाल कर कमरे से बाहर आ गया। नरेन ने रमेश को दवा दे दी। स्वयं आराम कुर्सी पर लेट गया। रमेश अब नींद के अंकुश में पूरी तरह से हो गया। तब नरेन ने सरोज की डायरी निकाल ली तथा वह उसे पढ़ने लगा काफी देर डायरी पढ़ता रहा। पढ़ते-पढ़ते नरेन की दृष्टि अंतिम पृष्ठ पर रुक गई। उसने देखा तारीख उसी दिन की थी डायरी के उस पृष्ठ को उसी दिन लिखा गया था। नरेन ने पढ़ना आरम्भ कर दिया

आज सायंकाल जब मैं रमेश के कमरे में जा रही थी तब अचानक सुना वे शब्द नरेन के थे नरेन कहे जा रहा था। उन शब्दों को सुनकर मैं वहीं ठिठक गई। नरेन कह रहा था

"रमेश तुम सरोज से दूर हो जाओ यह मेरी इच्छा है। जो बातें तुम्हें मैंने भावावेश में कही थीं उनको दिमाग से निकाल दो। वह तो सिर्फ मेरे गुस्से के कारण ही था। मैं तुम्हारे बारे में जानता हूँ मगर सरोज के जीवन पर कई छोटे बड़े दाग हैं फिर जो अपने पति की न हो सकी वह तुम्हारी क्या बन सकती है। वह तो सिर्फ तुम्हारे ऐश्वर्य को देख कर प्रेम व भक्ति का स्वांग भर रही है। वह तुम्हारी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए घातक है और इससे उसका व्यक्तित्व उभर कर नहीं आ पायेगा।

रमेश ने बस यही कहा था कि ठीक है मैं तुम्हारी हर बात मान लेता हूँ। मगर इस बात में तुम अभी गलती पर हो।

इतना सुनने बाद रमेश के कमरे में मेरी जाने की इच्छा नहीं हुई। सच रमेश ! नरेन सच ही तो कह रहा था। मैंने सिर्फ तुम्हें अपना

सम्भवत ही समझा मैं बिलकुल ही भूल गई कि तुम भी इसी समाज के अंग हो। मैंने स्वयं मेरे स्वार्थ हेतु ही तुम्हारी सामाजिक प्रतिष्ठा को धक्का लगाया। सच रमेश मैं बहुत ही स्वार्थी निकली। अब मेरा स्वार्थ स्थिर न रह सकेगा। रमेश मुझे क्षमा कर देना। मैं कल ही यहाँ से चली जाऊँगी। तुम्हारी सामाजिक बन्धनों से बंधी दुनिया से चली जाऊँगी। मुझ जैसी अभागी के लिए तो सिर्फ एक ही मार्ग है वह है आत्महत्या। मेरे लिये तो अवश्य पाप होगा पर तुम्हारे समाज के लिये तो एक पुण्य होगा जिसे मुझ-सी कुलटा से छुटकारा मिलेगा। अच्छा रमेश मेरी भूल क्षमा करना पर तुम्हें एक बात कहना चाहूँगी कि क्या जीवन में एकबार जो गिर गया वह वापस सम्भले ही नहीं? सबके बहने और बहुएँ हैं। जाने अनजाने वह भी फिसलती है पर इससे उन्हें क्या मृत्यु की ओर झोंक दिया जाय? मैं नरेश को कुछ भी बुरा नहीं कह रही हूँ पर उससे पूछती हूँ कि अगर उसकी बहिन की यह स्थिति होती तो वह क्या करता? वह यह कह सकता है कि मैं उसे जान से मार देता पर यह कोई स्वस्थ प्रतिकार नहीं। एक अपराधी को मिटा कर दूसरा अपराधी पैदा करना कोई अच्छा हल नहीं। और मैंने आवेश में जो कह दिया है उसके लिए मैं तुमसे और नरेश से क्षमा माँगती हूँ। अन्तिम प्रणाम?

पढ़ते पढ़ते उसे लगा कि सरोज ने आत्महत्या करली है। आत्महत्या इस लिये की है उसने उसे ऐसे शब्द कहे जो उसके जीवन में अन्धेरा फैला सकते हैं। वह अपने आपको हत्यारा समझने लगा। फिर वह उठ कर सरोज के कमरे में गया। वह तो रही थी। उसने एक सन्तोष की साँस ली फिर वापस आकर अपने कमरे में लेट गया कि वह सरोज को मरने नहीं देगा, उसे रमेश से दूर नहीं होने देगा कल वह उससे क्षमा भी माँग लेगा। लेकिन वह रात भर नहीं सोया।

●